संस्कृत पाठमाला ४

राहुल सांकृत्यायनः

श्री विद्या भवन संस्कृत ग्रन्थमाला २७

॥ श्रीः ॥

संस्कृत पाठमाला

चतुर्थ पुस्तक

लेखकः—

महापण्डित राहुलसांकृत्यायन

चौखम्बा विद्या भवन, बनारस-१

सं० २०१३] [ई० १९५६

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्या भवन

चौक, बनारस-१

The Chowkhamba Vidya Bhawan

Chowk, Banaras.

(INDIA)

1956

मूल्य—

प्रथम पुस्तक ॥)	द्वितीय पुस्तक ।।।)	तृतीय पुस्तक ।।।)
चतुर्थ पुस्तक ।।।)	पञ्चम पुस्तक ।।।=)	१-५ पुस्तक ३॥=)

मुद्रक—

विद्या विलास प्रेस,

बनारस-१

दो शब्द

३० वर्ष पहिले १६२६ ई० में मैं बौद्धधर्मके अध्ययन-के लिये सिंहल (श्री लङ्का) गया था। उस समय विद्या-लंकार परिवेण (विहार) में रहते वहाँके भिक्षुओंको संस्कृत पढ़ाने लगा। सभी जगहोंके विद्यार्थियोंकी तरह वहाँके विद्यार्थी भी संस्कृत भाषासे बहुत डरते थे। उन्हें सुगम रास्तेसे ले जानेके लिये ये पाँच पोथियाँ लिखी गईं, जिनमें पाँचवींमें छन्द और अलंकार भी रख दिये गये। विद्यार्थियोंको ये बहुत सुगम प्रतीत हुईं। इन्हें सिंहल भाषा और सिंहल लिपिमें उसी समय छापा गया। अब तक इनके कितने ही संस्करण छप चुके हैं। मित्रोंने इन्हें हिन्दीके साथ छापनेके लिये कहा। पूर्ववत् छापना अच्छा न समझ मैंने बहुतसे परिवर्तन कर दिये। कितने ही नये उद्धरण दिये, और इनका रूप पाठमालाका बना दिया।

पाठक पहिली बार व्याकरणवाले भागको छोड़ सकते हैं। हाँ, पाठको कई बार दुहराना चाहिये।

चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला एवं चौखम्बा विद्याभवनके स्वामी तथा संस्कृत ग्रन्थोंके सबसे बड़े उद्धारक और प्रचारक बाबू जयकृष्णदासजी गुप्तने बड़ी प्रसन्नता और तत्परतासे इनके प्रकाशनका भार अपने ऊपर लिया। यदि संस्कृतके सार्वजनीन प्रसारमें इनसे सहायता मिली, तो मैं अपने प्रयत्नको सफल समझूँगा।

मसूरी १३-२-५६ राहुल सांकृत्यायन

वनके
यारक
रतासे
कृतके
अपने

यन

चतुर्थ पुस्तक

प्रथमः पाठः

कोसलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान् ।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥ १ ॥

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ २ ॥

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता ।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥ ४ ॥

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः ।
पुरीमावासयामास दिवि देवपतिर्यथा ॥ ५ ॥

नाल्पसन्निचयः कश्चिद् आसीत् तस्मिन् पुरोत्तमे ।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥ १२ ॥

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो न नलिप्तांगो नासुगन्धश्च विद्यते ॥ १५ ॥

कांबोजविषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः ।
वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णायोध्या हयोत्तमैः ॥ २७ ॥

विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि ।
मदान्वितैरतिविमलैर्मातंगैः पर्वतोपमैः ॥ २८ ॥

नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसन्निभैः ॥ ३१ ॥

—वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकांड सर्ग १।

सरयूतीर पर अवस्थित बहुत धन-धान्यवाला कोसल नामक सुखी, समृद्ध देश था ॥ १ ॥

वहां लोकप्रसिद्ध अयोध्या नामक नगरी थी, जिसे मानव-राजा मनु ने स्वयं बनाया था ॥ २ ॥

ऐसे महाराजपथों द्वारा अच्छी तरह बंटी, शोभती थी, (जो पथ) छोडे फूलोंसे ढंका तथा सदा जलसे सिंचित था ।

उस पुरीको महान् राष्ट्रबर्धक राजा दशरथने स्वर्गमें देवेन्द्रकी तरह बसा रक्खा था ॥ ५ ॥

उस उत्तम पुरमें कोई अल्प-सञ्चयी सा कुटुम्बी नहीं था,
जो सिद्ध-अर्थ (और) गाय-घोड़ा धन-धान्य वाला न हो ॥ १२ ॥

कुंडल विना, मुकुट विना, माला विना, कम भोग, मार्जन विना, अंग लेपे विना और सुगंधके विना (वहां कोई) नहीं था ।

कंबोज देशमें उत्पन्न और बलखवाले उत्तम घोड़े, वनायु और नदी (के प्रदेशों) में उत्पन्न बढ़िया घोड़ोंसे भरी (थी वह नगरी) ।

विन्ध्याचलमें उत्पन्न हिमालयवाले पर्वत समान (विशाल) मदयुक्त अतिशुद्ध हाथियोंसे भरी थी ।

नित्य मस्त पहाड़ जैसे हाथियोंसे पूर्ण थी (वह पुरी) ।

मुदितः (प्रसन्न) **स्फीतः** (समृद्ध) **जनपदः** (देश) **निविष्टः** (अवस्थित) **प्रभूतः** (बहुत) **आसीत्** (थी) **लोकविश्रुता** (संसारप्रसिद्ध) **मानवेन्द्रः** (मनुष्योंका राजा) **राजमार्गः** (बड़ी सड़क) **सुविभक्ता** (सुंदर बंटी हुई) **पुष्पावकीर्णः** (फूल बिखरा) **सिक्तः** (सिंचा) **नित्यशः** (सदा) **महाराष्ट्रं** (बड़ा राष्ट्र) **विबर्धनः** (बढ़ानेवाला) **आवासयामास** (बसा रक्खा था) **दिवि** (स्वर्गमें) **देवपतिः** (देवराज, इन्द्र) **अल्पसन्निचयः** (अल्प-संचयी) **असिद्धार्थः** (जिसका प्रयोजन सिद्ध न हो) **अगवाश्वधन-धान्यवान्** (गाय-हाथी-धन-धान्य रहित) **अकुंडली** (विना कुंडलका) **अस्रग्वी** (विना मालाका) **अल्पभोगवान्** (कम भोगका) **अमृष्टः** (विना नहाया) **अलिप्तांगः** (अंगमें लेपके विना) **विद्यते** (विद्यमान था) **विषयः** (देश) **वाह्लीकः** (बलखदेश) **कंबोज** (पामीरके पासका देश) **हयः** (घोड़ा) **वनायुः** (देश) **नदीजः** (सिंधुनदीवाले) **मत्तः** (मस्त) **हैमवतः** (हिमालय वाला) **मदान्वितः** (मद चूनेवाला) **मातंगः** (हाथी) **पर्वतोपमः** (पहाड़

जैसा) नित्यमत्तः (सदा मस्त) नागः (हाथी) अचलः (पहाड़) सन्निभः (समान)।

समास (विशेष)—

(१) अव्ययीभाव—इसमें पहिलेका पद प्रधान, एकवचन, नपुंसकलिंग तथा ह्रस्व स्वर होता है। अव्ययके साथ समास होनेसे इसका यह नाम पड़ा। अव्यय निम्न हैं :—

स्वर् (स्वर्ग), अन्तर् (भीतर), प्रातर् (सवेरा), अनुतर् (पश्चात्तर), उच्चैस् (ऊंचा), नीचैस् (नीचा), युगपद् (एक साथ), पृथक् (अलग), ह्यस् (वीता कल), श्वस् (आगामी कल) दिवा (दिन), रात्रौ (रात), सायं (शाम), चिरं (देर), मनाक् (थोड़ा), ईषत् (थोड़ा), तूष्णीं (चुपचाप), बहिस् (बाहर), स्वयं (अपने), वृथा (व्यर्थ), नक्तं (रात), वत् (इव), तिरस् (पीछे, आड़में), अन्तरा (विना), शम् (मंगल), सहसा (एकाएक), विना (वगैर) नाना (अनेक), अलं (वस, रहने दो), अन्यद् (दूसरा), मृषा (झूठ), मिथ्या (झूठ), मुधा (व्यर्थ), पुरा (पुराने कालमें), मिथः (परस्पर), प्रायः (अकसर), मुहुस् (बारवार), अभीक्ष्णं (क्षण-क्षण), साकं (साथ), सार्धं (साथ), नमस् (नमस्कार), धिक् (धिक्कार), आम् (हां), मा (मुझे), च (और), ह (हँ), वा (या), एव (हां), एवं (ऐसा), नूनं (अवश्य), शाश्वत् (सनातन), चेत् (अगर), कच्चित् (क्या), किञ्चित् (कुछ), यत्र (जहां), तत्र (वहां), हन्त (अहो), यावत् (जबलों), तावत् (तबलों), तथा हि (तैसा कि), खलु (निश्चय), किल (निश्चय), अथ (तब, इसके बाद), सुष्ठु (अच्छा), हे, भोः (हे), अये (हे) अरे, रे, उ।

उदाहरण—बहिर् + वनं = बहिर्वनं (वनके बाहर), प्राग् + वनं = प्राग्वनं (वनसे पहिले), प्राग्वनात् ("), आमुक्ति, आ मुक्तेः (मुक्ति तक), अभि-अग्नि, अग्निम् अभि (आगके पास), प्रत्यग्नि, अग्निं प्रति (अग्निके प्रति), अनु-गंगम्, गंगाया अनु (गंगाके पीछे), पारेगंगं (गंगा पार), मध्येगंगं, उपराजं (राजाके समीप), अध्यात्मं (आत्माके भीतर, शरीरके भीतर), उपगिरि, उपगिरं (गिरिके पास)।

बहिर्वनं अगत्वा पारेगङ्गं नगरं अद्राक्षीत्—वनके बाहर न जा गंगा पार नगरको देखा। मध्येगङ्गं तत्र नावः इतस्ततः संचरन्ति—गङ्गामें वहां इधर-उधर नौकायें सञ्चार करतीं। उपरिगङ्गं विहरतीदानीं भगवान् अधिकौशाम्बि—गङ्गा के ऊपरी भागमें कौशाम्बीमें भगवान् इस समय विहार करते हैं।

द्वितीयः पाठः

(ईसवी सन् १५० में राजस्थान-मालवा-सौराष्ट्रपर शक राजा महाक्षत्रप रुद्रदामका प्रतापी शासन था। उसने गिरनार (गिरिनगर) की सुदर्शन झील-चंद्रगुप्त मौर्य (ई० पू० ३२२) के राज्यपाल (राष्ट्रिय) पुष्पगुप्त द्वारा बनवाये महान् सरोवर-का जीर्णोद्धार करा वहीं अशोक शिलालेखवाले पत्थर पर निम्न संस्कृतका सबसे पुराना शिला-लेख खुदवाया—

सिद्धम् (।) इदं तडाकंसुदर्शनं गिरिनगरादविदूरे मृत्तिकोपलविस्तारायामोच्छ्रायनिःसन्धिबद्धदृढसर्वपालीकत्वात् पर्वतपादप्रतिस्पर्धि सुश्लिष्टबन्धं……(अभि) जातेन कृत्रिमेण सेतुबन्धेनोपपन्नं सुप्रविहितप्रणालीपरीवाहमीढविधानं च (त्रि) स्कन्धबन्धं (दा) नादिभिरनुग्रहैर्महत्युपचये वर्तते। तदिदं राज्ञो सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनपौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य जयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्विसप्ततितमे ७०+२ मार्गशीर्षबहुलप्रतिपदायां‥सृष्टवृष्टिना पर्जन्येनैकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकतापलाशिनीप्रभृतीनां नदीनामतिमात्रोद्वृत्तैर्वेगैः सेतुम्………यमाणानुरूपप्रतिकारमपि गिरिशिखरतरुतटाट्टालकोपतल्पद्वारशरणोच्छ्रयविध्वंसिना युगनिधनसदृशपरमघोरवेगेन वायुना प्रमथितसलिलविक्षिप्तजर्ज्जरीकृताव………क्षिप्ताश्मवृक्षगुल्मलताप्रतानमानदीतलादित्युद्घाटितमासीत्, चत्वारि हस्तशतानि विंशदुत्तराण्यायतेनैतावन्त्येव विस्तीर्णेन पञ्चसप्तसप्ततिहस्तानवगाढेन भेदेन निःसृतसर्वतोयं मरुधन्वकल्पमति-

भृशं दुर्दर्शनं ············।···············स्यार्थे मौर्यस्य राज्ञः
चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्पगुप्तेन कारितमशोकस्य मौर्यस्य कृते
यवनराजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरभिलङ्कृतं तत्कारितया च
राजानुरूपकृतविधानया तस्मिन् भेदे दृष्टया प्रणाड्या निःसृतसेतु···।
णागरात् प्रभृत्यविहतसमुदितराजलक्ष्मधारणागुणतः सर्ववर्णैरभिगम्य
रक्षणार्थं पतित्वे (आ)प्राणोच्छ्वासात् पुरुषवधनिवृत्तिकृतसत्यप्रति-
ज्ञेनान्यत्र संग्रामेष्वभिमुखागतसदृशशत्रुप्रहरणवितरणत्वाविगुणरिपु··
धृतकारुण्येन स्वयमभिगतजनपदप्रणिपातायुषशरणदेन दस्यु-व्याल-
मृग-रोगादिभिरनुपसृष्ट-पूर्वनगर-निगम-जनपदानां स्ववीर्यार्जितानाम-
नुरक्तसर्वप्रकृतीनां पूर्वापराकरा-वन्त्य-नूप-नीवृदा-नर्त-सुराष्ट्र-श्वभ्र-
भरुकच्छ-सिन्धु-सौवीर-कुकुरा-परान्त-निषादादीनां समग्राणां विष-
याणां पत्या सर्वक्षत्राविष्कृतवीरशब्दजातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रस-
ह्योत्सादकेन दक्षिणापथपतेः सातकर्णेर्द्विरपि निर्व्याजमवजित्य सम्ब-
न्धाविदूरतया नुत्सादनात् प्राप्तयशसा मा··प्तविजयेन भ्रष्टराजप्रतिष्ठा-
पकेन यथार्थहस्तोच्छ्रयार्जितोर्जितधर्मानुरागेण शब्दार्थ-गान्धर्व-
न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारणधारणविज्ञान-प्रयोगावाप्तविपुलकी-
र्तिना तुरग-गज-रथ-चर्या-सि-चर्मनियुद्धाद्या··परबललाघवसौष्ठव
क्रियेणाहरहर्दानमानावमानशीलेन स्थूललक्षेण यथावत् प्राप्तैर्बलिशुल्क-
भागैः कनक-रजत-वज्रवैडूर्यरत्नोपचयविष्यन्दमानकोशेन स्फुटलघुमधुर-
चित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृतगद्यपद्य ·····न प्रमाणमानोन्मानस्वर-
गतिवर्णसारसत्त्वादिभिः परमलक्षणव्यंजनैरुपेतकान्तमूर्तिना स्वयमधि-
गतमहाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्ष-
त्रपेण रुद्रदाम्ना वर्षसहस्राय गोब्राह्म(णा)र्थं धर्मकीर्तिवृद्ध्यर्थं चापीड-
यित्वा कर-विशिष्टप्रणय-क्रियाभिः पौर-जानपदं जनं स्वस्मात् कोशात्
महता धनौघेनानतिमहता च कालेन त्रिगुणदृढतरविस्तारायामं सेतुं
विधाय सर्वतटे·······सुदर्शनतरं कारितम्। अस्मिन्नर्थे महाक्षत्रपस्य
मतिसचिव-कर्मसचिवैरमात्यगुणसमुद्युक्तैरप्यतिमहत्त्वाद् भेदस्यानुत्सा-

हविमुखमतिभिः प्रत्याख्यातारम्भं पुनः सेतुबन्धनैराश्याद्धाहाभूतासु प्रजास्विहाधिष्ठाने पौरजानपदजनानुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्त-सुराष्ट्राणां पालनार्थं नियुक्तेन पह्लवेन कुलैपपुत्रेणामात्येन सुविशाखेन यथावदर्थधर्मव्यवहारदर्शनैरनुरागमभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेना-विस्मितेनार्येणाहार्येण स्वधिष्ठिता धर्मकीर्तियशांसि भर्तुरभिवर्द्धयतानु-ष्ठितमिति।

[मंगल हो। यह सुदर्शन तडाग गिरिनगर (गिरनार) से अ-दूर मिट्टी-पत्थरकी विस्तार-चौड़ाई-ऊँचाईवाली विना-छेद बंधी दृढ पालीवाला होनेके कारण पर्वत-पादकी प्रतिस्पर्धा करनेवाला अच्छीतरह मिलाकर बद्ध…उत्तम किसिमकी आकृतिवाला सेतुके बन्धनसे युक्त अच्छीतरह बनी प्रणाली, परीवाह (बहानेकी नाली), मैला (साफ) करने (के नाले) और तीन जगह बंधा……आदि सहायतासे बहुत अच्छी स्थितिमें वर्तमान है। सो यह (सुदर्शन तडाग) राजा महाक्षत्रप सुंदर नामवाले स्वामी चष्टनके पोते, राजा क्षत्रप जयदामाके बेटे राजा महाक्षत्रप गुरुजनों द्वारा दोहराये जाते नामवाले रुद्रदामाने ७० + २ वर्षमें मार्गशीर्ष वदी प्रतिपदाको (प्रतिष्ठापित किया…)। (यह) वृष्टि, मेघसे एक समुद्र हो गई पृथिवीके हो जाने पर ऊर्जयन्त पहाड़से, सुवर्णसिकता, पलाशिनी आदि नदियोंके अत्यंत बड़े वेगों द्वारा सेतु (के लिये)…अनुकूल प्रतिकार (क्रिया) होने पर भी गिरि-शिखर, तरु, तट, अटारी, कोठे, द्वार, घर, ऊँचाई के विध्वंसक, युगान्त के सदृश परम घोर वेगवाले, वायुसे मथित पानी द्वारा विक्षिप्त जर्जरीकृत, फेंके हुए पत्थर-वृक्ष-झाडी-लता-प्रतानसे नदीके तट तक उखड़ गया था। चार सौ बीस हाथ लंबी उतनी ही हाथ चौड़ी पचहत्तर हाथ गहरी दरार से सारे पानी के निकल जानेसे (यह सुदर्शन) रेगिस्तानी बयाबान सा दुर्दर्शन (होगया)।……के लिये मौर्य राजा चंद्रगुप्तके राज्यपाल (राष्ट्रिय) वैश्य पुष्पगुप्त द्वारा बनवाया (गया था)। अशोक मौर्यके लिये यवनराज तुषास्फके (अपने) अधिष्ठातृत्वमें प्रणालियोंसे अलंकृत और बनवाई राजाओंके अनुरूप व्यवस्था, उस दरारमें दीखती प्रणालीसे महा सेतु (टूट गया)।

गर्भसे लेकर अक्षुण्ण और समूहित राजलक्ष्मीके धारणके गुणके कारण सभी वर्णों द्वारा पास पहुंच (अपनी) रक्षार्थ पतिके तौर पर (वरे गये), युद्धको छोड़

सांस रहे तकके लिये पुरुष-वधसे विरत होने की प्रतिज्ञावाले; सामने आये (अपने) समान प्रहार देनसे बेकार दुश्मन (पर)…करुणा रखनेवाले, स्वयं आप्रणिपात किये जनपदको जीवन और शरण देनेवाले; डाकू-दरिंदे-जानवर-रोग आदिसे अछूते नगर-निगम-जनपदकी स्वपराक्रम द्वारा अर्जित अनुरक्त सारी प्रजा (वाले); पूर्वी पश्चिमी आकर, अवन्ती, अनूप, नीवृद, आनर्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, भरुकच्छ, सिन्धु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषद आदि सारे……विषयों (प्रदेशों) के पति, सारे क्षत्रियोंमें वीर शब्दसे प्रकट होनेके अभिमानी यौधेयोंको बलपूर्वक उखाड़नेवाले; दक्षिणापथके पति सातकर्णीको दो वार साफ तौरसे जीत-जीतकर नजदीकका संबंध होनेके कारण उच्छिन्न न करनेसे पाये यशवाले; (सिंहासन-) च्युत राजाओंके (पुनः) प्रतिष्ठापक, हाथको ठीकसे उठा दृढ धर्मानुराग अर्जित करनेवाले; व्याकरण, अर्थशास्त्र, न्याय आदि विद्याओं के पार करने, याद करने, समझने और प्रयोगसे बड़ी कीर्ति पाये हुये; घोड़ा-हाथी-रथके चलाने, तलवार-ढालके युद्ध आदि…बलशाली, सफाई और निपुणाईकी क्रिया वाले, रोज-रोज दान-मान-अपमान के स्वभाववाले; बहुत दान देनेवाले, ठीकसे पाये कर, शुल्कके भागोंसे सोना-चांदी-हीरा रत्नोंके संचयसे बहते कोशवाले; स्पष्ट-संक्षिप्त, मधुर-विचित्र-कमनीय शब्दोंसे उदार और अलंकृत गद्य-पद्य (रचनेवाले)…लंबाई-चौड़ाई-ऊँचाई, स्वर, चाल, रंगसार, साहस आदि द्वारा श्रेष्ठ लक्षण-व्यंजन-सहित कमनीय मूर्तिवाले; स्वयं प्राप्त महाक्षत्रप नामवाले; राजकन्याओंके स्वयंवरोंमें अनेक माला पानेवाले; महाक्षत्रप रुद्रदामाने सहस्र वर्षतक गौ-ब्राह्मणके अर्थ धर्म और कीर्तिकी वृद्धिके वास्ते और बिना पीडा दिये कर-वेगार-भेंट की क्रियाओंसे नागरिक और देहाती जनोंके (हितार्थ) अपने कोशसे भारी धनराशि द्वारा और बहुत बड़े कालसे तिगुना मजबूत लंबाई चौड़ाई युक्त सेतु (बांध) को बना सारे तट (को शिलाबद्धकर) अधिक सुदर्शन बनवाया। इस काममें महाक्षत्रपके अमात्योंके गुणोंसे युक्त सलाहकार और कर्म-सचिवोंने भी दरार के बहुत बड़े होनेसे उत्साहहीनता छोड़ कार्यके आरंभका प्रत्याख्यान (न कर) फिर सेतु बांधनेकी निराशासे हाहा करती प्रजाके होते भी इस स्थानमें पौर-जानपद जनोंके अनुग्रहके अर्थ राजाके ठीक अर्थ, धर्म, व्यवहार प्रदर्शन द्वारा अनुराग बढ़ाते, समर्थ, दान्त, अचपल, अ-विस्मित, आर्य, अहारक राजा द्वारा सारे आनर्त और सुराष्ट्रके पालनपर नियुक्त पह्लव (वंशी)

कुलैप-पुत्र अमात्य सुविशाखने अच्छीतरह अधिष्ठातृत्व करते (अपने) स्वामीके धर्म, कीर्ति और यशको बढ़ानेके लिये (यह काम) पूरा किया।]

सिद्धं (सिद्धि, मंगल हो) अविदूरे (नजदीक) मृत्तिका (मिट्टी) उपलः (पत्थर) विस्तारः (लम्बाई) आयामः (चौड़ाई) उच्छ्रायः (ऊंचाई) निःसन्धिः (छिद्ररहित) पाली (पांती) प्रतिस्पर्धि (प्रतिद्वंद्वी) सुश्लिष्टं (खूब जुडा हुआ) अवजातः (अभिजातः, अच्छा) सेतुबन्धः (बन्ध बांधना) सुप्रतिविहितः (अच्छी तरह बनाया) प्रणाली (नहर) परिवाहः (पनाला) मीढः (गन्दा कूड़ा) त्रिस्कन्धः (तेहरा) अनुग्रहः (उपकार, दया) उपचयः (सञ्चय) महाक्षत्रपः (महाराजा) सुगृहीतनामा (अच्छा पाये नामवाला) गुरुः (गुरुजन, माता-पिता आदि) अभ्यस्त (दुहराया, रक्खा) बहुलः (कृष्णपक्ष) प्रतिपदा (पहिली तिथि) (अति)सृष्टवृष्टिः (छोड़ी वर्षा) पर्जन्यः (मेघ) अर्णवः (समुद्र) ऊर्जयन् (गिरनार पहाड़ का नाम) सुवर्णसिक्ता (सोना बालू नदी) पलाशिनी (पलाशोंवाली नदी) अतिमात्रं (अत्यधिक) उद्वृत्तं (उठे, बढ़े) अनुरूपं (अनुकूल, उचित) प्रतिकार (बाधा हटाना) अट्टालकं (अटारी, कोठा) उपतल्पं (अटारी) शरणं (घर) युगनिधनं (प्रलय) प्रमथितः (मथा, हिलाया) विक्षिप्तं (फेंका) जर्जरीकृतं (जर्जर किया गया) अश्म (पत्थर) गुल्म (झाड़ी) लताप्रतानं (लतापतान) आनदीतलाद् (नदीतल तक) उद्घाटितं (उखाड़ा) चत्वारि हस्तशतानि (चार सौ हाथ) तावन्ति (उतना)अवगाढं (गहरा) भेदः (विवर, दरार) राष्ट्रियः (राज्यपाल) कारितं (कराया, बनवाया) राजानुरूपं (राजा के मुवाफिक) प्रणाडी (नहर, प्रणाली) प्रभृति (से लेकर) अविहतः (अक्षुण्ण) समुदितः (राशि किया) धारणा (धारना) अभिगम्य (पास जाकर) प्राणोच्छ्वासः (सांस) निवृत्तिः (त्याग, विरति) सत्यप्रतिज्ञः (सच्ची प्रतीज्ञा वाला) अन्यत्र (छोड़ कर) अभिमुखं (सामने) प्रहरणं (प्रहार) वितरणं (देना, लगाना) धृतकारुण्यः (करुणा धारे) अभिगतः (आया) प्रणिपतितः (प्रणिपात किया) शरणदः (शरण देनेवाला) दस्युः (डाकू) व्यालः (हिंस्र जन्तु) अनुपसृष्ट (न छुआ) निगमः (छोटा नगर) वीर्य (पराक्रम) अनुरक्तः (अनुगामी) प्रकृतिः (प्रजा) आकरः (पूर्वी मालवा) अवन्ती (मालवा) अनूपः (कच्छ)

नीवृद् (देश) आनर्तः (पूर्वोत्तर काठियावाड) सुराष्ट्रं (सौराष्ट्र, काठियावाड) श्वभ्रः (साबरमती–उपत्यका) भरुकच्छः (भडोच) सौवीरः (उत्तरी सिंध) कुकुरः (पूर्व-दक्षिण गुजरात) अपरान्तः (उत्तर कोंकण) निषादः (पच्छिमी वरार, बागलान) आविष्कृतं (प्रकट किया, प्रसिद्ध) उत्सेकः (अभिमान) अविधेयः (न हुक्म दिया जानेवाला) यौधेयाः (हरियाना) प्रसह्य (बलात्) उत्सादकः (उच्छेत्ता) दक्षिणापथः (दक्षिण भारत) सातकर्णिः (राजवंश) द्विः (दो बार) निर्व्याजं (बिना कपटके) अवजित्य (जीत कर) संबंधाविदूरता (रिश्तेदारी) अनुत्सादनं (न उच्छेद करना) भ्रष्टं (च्युत, गिरा) प्रतिष्ठापकः (स्थापक) यथार्हः (यथायोग्य) अर्जितः (सञ्चित) ऊर्जितः (बढ़ाया) शब्दविद्या (व्याकरण) अर्थविद्या (अर्थशास्त्र) गान्धर्वविद्या (संगीतशास्त्र) न्यायविद्या (न्यायशास्त्र) पारणा (पारंगत होना) धारणा (याद करना) विज्ञानं (जानना) प्रयोगः (अभ्यास) अवाप्तं (प्राप्त) विपुलं (विशाल) तुरगः (घोड़ा) गजः (हाथी) चर्या (चलाना) चर्म (ढाल) असिः (तलवार) नियुद्धं (लड़ना) परबलं (बड़ा बल) सौष्ठवं (अच्छाई) अहरहः (प्रतिदिन) अवमान (अपमान) स्थूललक्षः (बड़ा दाता) यथावत् (ठीक से) बलिः (मालगुजारी) शुल्कः (चुङ्गी) भागः (अंश) रजतं (चांदी) वज्रवैडूर्य (हीरा, विडूरगिरिमें उत्पन्न) उपचयः (संचय) विष्यन्दमानं (भरकर बह चलना) स्फुटं (स्पष्ट) लघु (संक्षिप्त) चित्रं (विचित्र) कान्त (कमनीय) शब्दसमयः (शब्द का संकेत) उदारः (विशाल) अलंकृतं (भूषित) गद्यं (न-छन्दोबद्ध) पद्यं (छन्दोबद्ध) प्रमाणं (विस्तार) मानं (चौड़ाई) उन्मानं (ऊंचाई) गतिः (चाल, गत) वर्णः (रंग) सारः (सिल्ली) सत्त्वं (हिम्मत) परम (सबसे अच्छा) लक्षणं (लच्छन) व्यञ्जनं (शंख आदि शरीर लक्षण) उपेतः (युक्त) कान्तमूर्त्तिः (सुन्दराकार) अधिगतं (प्राप्त) माल्यं (माला) दाम (हार) अपीडयित्वा (पीडा दिये बिना) करः (महसूल) विशिष्टः (बेगार) प्रणयक्रिया (भेंट) पौरः (नगरवासी) जानपदः (देहातवासी) धनौघः (धनसमूह) अतिमहान् (बहुत बड़ा) त्रिगुणं (तिगुना) दृढतरं (अधिक दृढ़) सुदर्शनतरं (अधिक दर्शनीय) मतिसचिवः (सलाहकार) कर्मसचिवः (सेक्रेटरी) अमात्यः (मन्त्री)

समुद्युक्तं (युक्त) अनुत्साहविमुखः (उत्साही) प्रत्याख्यातं (इन्कार किया) आरम्भ (कामका) नैराश्यं (निराशा) हाहाभूता (हाहाकार करती) अधिष्ठानं (स्थान) पार्थिवः (राजा) कृत्स्नः (समस्त) आनर्तः (पूर्वोत्तर काठियावाड) पह्लवः (पारसीक कुल) यथावद् (काफी) व्यवहारः (न्याय-विभाग) अभिवर्धयन् (बढ़ाता) शक्तः (समर्थ) दान्तः (दमनयुक्त, संयमी) अचपलः (अचञ्चल) अविस्मितः (अभिमानरहित) आर्यः (श्रेष्ठ) अहार्यः (घूस आदि न ले सकनेवाला) स्वधितिष्ठन् (अच्छा अधिष्ठातृत्व करता) भर्ता (स्वामी) अभिवर्धयन् (बढ़ाता) अनुष्ठितं (कार्य पूरा किया)

समास—

२. द्विगु—संख्या पहिले रख कर बना समास। यह नपुंसक और एक-वचन होता है। उदाहरण—

पञ्चगवम् (पांच गायें), द्वियोजनं (दो योजन), पञ्चनदम् (पांच नदी), पञ्चराजम्।

३. तत्पुरुष—जिसमें उत्तर (बाद) का पद प्रधान हो। इसमें लिंग पिछले पद का अनुसरण करता है। उदाहरण—

(२) जलं पिपासुः = जलपिपासुः (जल पीनेकी इच्छावाला), ग्रामगतः।
(३) असिना छिन्नः = असिच्छिन्नः (तलवारसे कटा)।
(४) परिधानाय शाटकं = परिधानशाटकं (पहननेकी साड़ी)।
(५) चोरभयं, वृकभीतः, धनुर्मुक्तः (धनुषसे मुक्त)।
(६) राजपुरुषः (राजाका पुरुष), देवपूजकः, पिटकाध्यापकः।
(७) आतपशुष्कः (धूपमें सूखा), स्थालीपक्वः।

४. कर्मधारय—पूर्व और उत्तर पद प्रधान, विशेषण, विशेष्य वाला समास।

उदाहरण—

महान्–देवः–महादेवः (बड़ा देव), कृष्ण–सर्पः, नील–कम्बलम्।

मध्ये जम्बूद्वीपे हिमवतः पञ्चगंगं—गंगा, यमुना, सरयू, अचिरवती, मही च—प्रवहति। ग्रामगतो भवान् अनश्वेन रथेन गतः

पदातिको वा ? आतपशुष्केऽस्मिन् ग्रामे को नाम निवसेत् ? द्विक्रोश-मितः कोलम्बनगरम् ।

[मध्य जम्बूद्वीपमें गङ्गा, यमुना, सरयू, राप्ती और गण्डक (यह) पञ्चगङ्गा बहती हैं। गांव गये आप विना घोड़ेके रथसे गये या पैदल ? धूपसे सूखे इस गांवमें कौन बसे ? दो कोस यहांसे (है) कोलम्बो नगर ।]

तृतीयः पाठः

ग्राम-कायथ (दिविर)—

निरस्य ग्रामदिविरं चौर्याणामचिकित्सकम् ।
चकार दारिकं सोऽथ चिकित्साचतुरं परम् ॥ १२८ ॥
स मुक्तो बन्धनात् तेन क्षिप्रं द्वादशवार्षिकात् ।
लिलेख कूटकपटप्रकटाक्षरकोविदः ॥ १२९ ॥
कृत्तांगुष्ठः स वामेन पाणिना दिविरो रहः ।
खलस्तस्य गृहं गत्वा विदधे भूर्जयोजनम् ॥ १३० ॥
गृहीत्वा मद्यकलशं स जानुयुगलान्तरे ।
मुहुर्मुहुः परिमितं पिबन् बहुतरं शनैः ॥ १३१ ॥
लिलेख चीरीचीत्कारतारं कलमरेखया ।
शान्त्यांगुल्या सनिर्घोषं लालयोत्पुंसिताक्षरः ॥ १३२ ॥
विलुम्पन् विप्र-गो-देव-नित्यनैमित्तिकव्ययम् ।
श्रीचर्मकारगुरुणा रुग्णनाथेन भाषितम् ॥ १३३ ॥
शिवभक्तिभराक्रन्दं मुहुर्गायन् खरस्वरः ।
यूकाः पिषन् नखाग्रेण मुहुरुच्चित्य कम्बलात् ॥ १३४ ॥
मुहुर्निःश्वस्य निःश्वस्य निन्दन् संसारचेष्टितम् ।
व्ययेन स समीकुर्वन् प्रवेशे हर्षनिर्भरः ॥ १३५ ॥

आविष्ट इव वेतालश्चकम्पे मद्यघूर्णितः ।
कर्परीच्छिद्रनिर्यातव्यावलिगवृषणद्वयः ॥ १३६ ॥
लुठत्पूर्णमषीभाण्डच्छटाच्छुरितविग्रहः ।
ननर्त दिविरः क्षीवो नग्नो भग्नवृसीघटः ॥ १३७ ॥
धूसरो मलदिग्धांगः स पिशाच इवोत्थितः ।
जनजीवापहारेण ननन्द मदनिर्भरः ॥ १३८ ॥

—नर्ममाला (क्षेमेन्द्र)

चोरियोंके अ-शोधक गांवके दिविर (पटवारी) को हटाकर, शोधनमें चतुर दूसरे दारिकको बनाया ॥ १२८ ॥

बारह वर्षके (कारा-)बन्धसे मुक्त हो स्पष्ट अक्षर जाली (दस्तावेज) लिखनेमें चतुर उस (दिविर) ने लिखा । (इस अपराधमें) अंगूठा कटे एकान्तमें उस खल दिविरने घर जा बायें हाथसे भूर्ज (पत्रिका) की योजना बनाई ॥ १३० ॥

दोनों जांघोंके बीच शरावका कलश पकड़, बार-बार बहुत परिमित (शराब) धीरे-धीरे पीते, चीरीके ची-ची करने जैसी कलमकी रेखासे, शान्तिपूर्वक आवाज के साथ, रालसे पोंछे जाते अक्षरवाले (लेखको) उसने लिखा ॥ १३१-१३२ ॥

ब्राह्मण, गौ, देवताके नित्य-नैमित्तिक खर्चका लोप करता, (लिखते समय) शिव-भक्तिके बोझसे दबा जाता, बार-बार गदहेके स्वरमें रोगी स्वामी श्रीचमार गुरुकी बानीको गाता मुहुः कम्बलसे बीन कर जूंको नहसे पीसता, मुहुः लम्बी सांस ले-ले संसार के कामोंकी निन्दा करता, बहुत प्रसन्न हो आयमें व्ययको बराबर करता ॥ १३३-१३५ ॥

भूत सिरपर चढ़ेकी तरह शराबसे मतवाला, कपड़ेके छेदसे निकले तथा हिलते दोनों अण्डकोशोंवाला, लुढ़कती भरी दवातकी छटासे अंकित शरीरवाला, टूटे घटवाला निर्लज्ज नग्न दिविर नाचता रहा ॥ १३६-१३८ ॥

निरस्य (हटा कर) ग्रामदिविरः (गांवका लेखपाल, कायथ) चौर्यं (चोरी) अचिकित्सकः (नहीं निवारक) दारिकः (नाम) परः (अन्य,

पश्चात्) बन्धनम् (जेल) क्षिप्रं (तुरन्त) लिलेख (लिखा, लिट्) कूटं (जाली) कोविदः (चतुर) कृत्तः (कटा) अङ्गुष्ठः (अङ्गूठा) रहः (एकान्तमें) खलः (दुष्ट) विदधे (बनाया, लिट्) भूर्जयोजनं (भूर्जपत्तला) कलशः (घट) जानु (जांघ) मुहुः (बार-बार) परिमित (परिमाणसे) बहुतरं (अधिकतर) लिलेख (लिखा, लिट्) कलमरेखा (कलम जैसी रेखा) चीरी (एक छोटा पक्षी) चीत्कारः (चिक्कारना) तारं (ऊंचे) निर्घोषः (आवाज) लाला (थूक) उत्पुंसितः (पुंछा) विलुम्पन् (लोप करता) नित्यः (रोज होनेवाला) नैमित्तिकः (विशेष अवसरका) व्ययः (खर्च) श्रीचर्मकार (चमारपाद) गुरुः (सिद्ध, सन्त) भाषितं (बानी, रचा पद्य) रुग्णनाथः (रोगी महात्मा) शिवभक्तिः (शंकरकी भक्ति) भरः (बोझ) आक्रन्दः (रोना, करुण गान) खरः (गदहा) यूकाः (जूयें) पिषन् (पीसता) नखाग्रं (नहकी नोक) उच्चित्य (बीन कर) निःश्वस्य (लंबी सांस ले) निन्दन् (उपालम्भ देते) चेष्टितं (व्यवहार) समीकुर्वन् (बराबर करता) प्रवेशः (आय) हर्षनिर्भरः (बहुत खुश) आविष्टः (भूत चढ़ा) चकम्पे (कांपा, लिट्) घूर्णितः (चकराता) कर्परी (चीथड़ा) निर्यातः (निकला) व्याघलिंग (हिलता) वृषणः (अंडकोश) लुठत् (लुढ़कता) मषीभांडं (दवात) छुरितं (लिपा) विग्रहः (शरीर) ननर्त (नाचा, लिट्) क्षीवः (बेशरम) भग्नः (टूटा) वृसी (मदिरा) दिग्धः (सना) अंगं (देह) उत्थितः (उठा) जनजीवः (लोगोंकी जीविका) अपहारः (छीनना) ननन्द (आनन्दित हुआ, लिट्) मदनिर्भरः (शराबके बसमें)।

भूर्जपत्तला अफसरोंके सरकारी परवानेको कहते थे, जैसे राजाकी भूर्जपत्तला—

(श्री राज्ञो भूर्जपत्तला) श्रीमदमुकराजादेशात् अमुकराणकस्य सप्रसादं समादिश्यते यथा अमुकदेशोयं श्री अस्माभिः पूर्वरूढ्या···देवदायब्रह्मदायवर्ज्जं भवतः प्रसादेन प्रदत्त इति। संवत् १२८८ वर्षे वैशाखशुदि १५ सोमे···स्वयमादेशः)।

[श्रीमद्···(अमुक) राजाकी आज्ञासे···(अमुक) रानाको कृपापूर्वक आदेश दिया जाता है, कि···(अमुक) यह देश श्रीहमने पूर्वसे चले आते देवदाय, ब्राह्मणदायको छोड़ प्रसन्न हो आपको प्रदान किया, इति। संवत् १२८८ वर्षे वैशाख शुदि १५ सोमवार स्वयं (दिया) आदेश] —लेखपद्धति, पृष्ठ ७

समास (पूर्वके बाद)—

५. द्वन्द्व—पूर्व और उत्तर दोनों पद इसमें प्रधानता रखते हैं, तथा च (और) के अर्थमें आता है। उदाहरण—अश्व-रथौ (अश्वश्च रथश्च, अश्व और रथ), मधुमाधवौ (मधु और माधव)—कम स्वरवाले शब्द पहले आते हैं। यहाँ संख्याके अनुसार लिंग, वचन होता है। निम्नमें नपुंसक और एकवचन होता है—

(१) प्राणीके अंग—पाणिपादं (हाथ और पैर)।
(२) बाजे—मार्दंगिकपाणविकं (मृदंगी और ढोलकी)।
(३) सेनाके अवयव—रथिकाश्वारोहं (रथी और सवार)।
(४) अणियोंकी जातियों का द्वन्द्व—धाना-शष्कुलि (दाना और पूरी)।
(५) नदीवाला प्रदेश—गङ्गाशोणं (गंगा और सोनवाला देश)।
(६) क्षुद्र जन्तुओंका—यूकालिक्षं (जुयें और लीख)।
(७) जिनका सनातनसे विरोध है, उनका द्वन्द्व समास—अहि-नकुलं (सांप-नेवला), गो-व्याघ्रं (बैल और बाघ)।

ऋकारान्तवाले शब्द आकारान्त रहते हैं—माता-पितरौ (मा-बाप)।

६. बहुव्रीहि—समास किये पदोंसे भिन्न कोई पद इसमें प्रधान होता है, जैसे तरुण-भार्यः (तरुणी है भार्या जिसकी) में न तरुणी और न भार्या अर्थ में आते हैं, बल्कि इन दोनोंसे भिन्न वह पुरुष लिया जाता है, जिसकी भार्या, तरुणी है। इसी तरह—प्राप्तोदकः (जहां पानी मिला वह गांव), पीतांबरो (पीला वस्त्र है जिसका), स-पुत्रः, चित्रगुः (चितकबरी गाय है, जिसकी), पटुभार्यः (चतुर पत्नी है जिसकी)।

७. नञ् समास—निषेधवाची समास, उदाहरण—अ-ब्राह्मणः (नहीं ब्राह्मण)।

अधियुद्धं रथिकाश्वारोहस्य न पाणिपादं तिष्ठति (युद्धमें रथियों सवारोंका हाथ पैर नहीं रहता)।

गंगा-वरुणं वाराणसी पुरी—गंगा और वरुणावाली पुरी बनारस।

मलिनानां पटे यूका-लिक्षं सर्वतः—मैले रहनेवालोंके वस्त्रमें सब जगह जूंयें और लीख।

कथं गोव्याघ्रं एकत्र तिष्ठेत्—कैसे गौ और बाघ एक जगह रहें ?

प्राप्तग्रामः पीतांबरः पुरुषः—पीले कपड़ेवाला पुरुष गांव पहुंचा।

देवदत्तः पाचिकभार्यस्य गृहात् उद्धृतोदनां स्थालीं सस्त्रीकाय भवते आनिनीषति—देवदत्त रसोईदारिन-पत्नीवाले के घरसे चावल निकाली बटुली सपत्नीक आपके लिये लाना चाहता है।

चतुर्थः पाठः

अहमपि एभिरेव सुहृद्भिः भूमिवलयं परिभ्रमन् उपासरं कदाचित् काशीपुरीं वाराणसीम्। उपस्पृश्य निर्मलांभसि मणिकर्णिकायां अविमुक्तेश्वरं भगवन्तं अभिप्रणम्य परिभ्रमन् पुरुषमेकं आयान्तं आबध्यमानपरिकरं अविरतरुदितताम्रदृष्टिं अद्राक्षम् अतर्कयं च—'कर्कशोयं पुरुषः, कार्पण्यमिव वर्षति क्षीणतारं चक्षुः, नूनं असौ प्राणनिःस्पृहः किमपि कृच्छ्रं प्रियजनव्यसनमूलं प्रतिपत्स्यते तत्पृच्छेयमेनम्' अपृच्छं च—'भद्र, सन्नाहोऽयं साहसं अवगमयति, न चेद् गोप्यं इच्छामि श्रोतुं शोकहेतुम् ?'

स मां सबहुमानं निर्वर्ण्य—'को दोषः'।

ततः क्वचित् करवीरतरुतले मया सह निषण्णः कथां अकार्षीत्—

'महाभाग, अहमस्मि कामचरः पूर्णभद्रो नाम गृहपतिपुत्रः प्रयत्नसंवर्धितोऽपि पित्रा चौर्यवृत्तिरभूवम्। अथ अस्य काशीपुर्यां अर्यवर्यस्य कस्यचिद् गृहे चोरयित्वा रूपाभिग्राहितो बद्धः।

—दशकुमारचरित (दंडी), उत्तरपीठिका, ४

[मैं भी इन्हीं मित्रोंके साथ भूमंडलमें विहरता काशीपुरी बनारसमें पहुंचा। मणिकर्णिकाके निर्मल जलका आचमनकर भगवान् अविमुक्तेश्वर (विश्वेश्वर) को प्रणाम कर घूमते मैंने कमरबंद (फांडे) बांधते आते निरन्तर रोनेसे लाल हुई आंखोंवाले पुरुषको देखा। सोचने लगा—'यह पुरुष कर्कश है, (पर) क्षीण पुतलियों

से दीनता सी बरसा रहा है। निश्चय यह प्राणोंसे न लोभ रखनेवाला, प्रियजनोंकी विपत्तिके कारण कठिनाइयोंमें पड़ा होगा' फिर मैंने पूछा—'भद्र यह (तुम्हारी) तैयारी दुष्करकर्मका पता देती है, यदि गोप्य न हो, तो शोकका कारण सुनना चाहता हूँ ?']

वह सम्मानके साथ मुझे देखकर (बोला)—'क्या हरज ?'

तव किसी करवीर वृक्षके नीचे मेरे साथ बैठे उसने कथा कही—'महानुभाव, मैं पूर्णभद्र नामक वणिक् पुत्र हूं। पिता द्वारा प्रयत्नके साथ पाला-पोसा भी चोरीकी वृत्तिवाला हो गया। फिर इस काशीपुरीमें किसी वैश्यवरके घरमें चोरी कर रूपयोंके साथ पकड़ा जा कर बन्दी बना।]

सुहृद् (मित्र) **भूमिवलय** (भूगोल) **उपासरं** (पास गया) **उपस्पृश्य** (उपस्पर्श कर) **अम्भः** (जल) **अविमुक्तेश्वरः** (अमुक्तोंका ईश्वर) **परिकरः** (फांड, कमरबंद) **अविरतं** (निरन्तर) **ताम्रः** (लाल) **दृष्टिः** (आंख) **अद्राक्षं** (देखा) **अतर्कयं** (कल्पना की) **कार्पण्यं** (दीनता) **तारा** (पुतली) **निःस्पृहः** (निर्लोभी) **कृच्छ्रं** (कठिन) **व्यसनं** (कष्ट) **प्रतिप्त्स्यते** (पावेगा) **पृच्छेयं** (पूछूं) **सन्नाहः** (साजबाज) **अवगमयति** (जतलाता है) **गोप्यं** (छिपाने योग्य) **बहुमानं** (बहुत आदर) **निर्वर्ण्य** (देख कर) **निषण्णः** (बैठा) **कामचरः** (स्वेच्छाचारी) **गृहपतिः** (वैश्य) **संवर्धितः** (पालापोसा गया) **चौर्यवृत्तिः** (चोरी के पेशेवाला) **अर्यः** (वैश्य) **रूपं** (रुपया) **अभिग्राहितः** (पकड़ाया)।

[**उपसर्ग**—धातुओंके पहिले आते हैं, जिन से धातु के अर्थ परिवर्तित हो जाते हैं।

प्रत्यय—धातुके पीछे सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त और तद्धित के रूपसे आते हैं।

निपात—में उपसर्ग या प्रत्यय नहीं लगते, वे सदा एक ही रूपमें दीखते हैं।

तद्धित—भिन्न-भिन्न अर्थोंमें आते हैं—

१. संबन्धके आर्थमें : (१). अ (ण्)—अश्वपति-संबन्धी आश्वपत (आदि स्वरकी वृद्धि और अन्तिम इका अ]।

(२) ण्यत्—दिति संबधी दैत्य (आदि स्वर की वृद्धि, अन्तिम स्वरका य)।

(३) ईय—कात्य + ईय् = कातीय, का त्यायन + ईय = कात्यायनीय।

२. अपत्य (संतान) के अर्थमें—

(४) अण्, उपमन्यु + अण् = औपमन्यवः, मनु-अण्—मानवः (आदिस्वरकी वृद्धि अन्तिम स्वरका गुण)।

(५) इ—(आदिस्वरकी वृद्धि, अन्तिम का इ होना) जैसे—दक्षका अपत्य, दाक्षिः, दाशरथिः, सौमित्रिः, पौष्करसातिः।

(६) अयन—(आदिस्वर वृद्धि) अश्वल + अपत्य, आश्वलायनः, शालंकायनः, तैकायनः (तिक), द्वैपायनः (द्विप), सांकृत्यायनः (संकृति), कौसल्यायनः (कोसल)।

(७) यञ्—(आदिस्वर वृद्धि, अन्तिमका य)—गर्ग + अपत्य, गर्ग + यञ् = गार्ग्यः, वात्स्यः, सांकृत्यः, पौलस्त्यः, वाभ्रव्यः (वभ्रु), शाण्डिल्यः (शण्डिल), चाणक्यः (चणक), पाराशर्यः (पराशर), याज्ञवल्क्यः (यज्ञवल्क), मौद्गल्यः (मुद्गल)।

३. युवा (तरुण) अपत्यके लिये—

(८) फञ्—(आदिस्वरकी वृद्धि और अन्त्यके स्थानमें आयन)—अश्वका युवा अपत्य, अश्व + फञ् = आश्वायनः, आश्वलायनः, वात्स्यायनः। साधारण अपत्यके लिये भी यह आ सकता है।

४. गोत्रके लिये—

अण् (आदिस्वरवृद्धि, अन्त्य स्वरका अ), ढक् (आदिस्वरवृद्धि, अन्त्य स्वरका इय), ण्य (आदिस्वरवृद्धि, अन्त्यका य), अञ् (आदिस्वरवृद्धि अन्त्यका अ), अञ् (आदिस्वरवृद्धि, अन्त्यका अ)। ये प्रत्यय कभी सामान्य सम्बन्धमें भी आते हैं।

(९) अण्—शिव + अण् = शैवः, वासिष्ठः (वसिष्ठ), वैश्वामित्रः (विश्वामित्र), कौशिकः (कुशिक), मांडूकः (मंडूक), यामुनः (यमुना), नार्मदः (नर्मदा), वैष्णवः (विष्णु)।

(१०) ढक् (= इय्)—वैनतेयः (विनता), कौन्तेयः (कुन्ति), रौहिणेयः (रोहिणी), रौक्मिणेयः (रुक्मिणी), कौशाम्बेयः (कौशाम्बी)। यह प्रत्यय स्त्रीवाची शब्दोंसे आता है।

(११) ण्य—कौरव्यः (कुरु), मौर्यः (मुरा), शाक्यः (शक), वामरथ्यः (वामरथ), नैषध्यः (निषध), साम्राज्यं (सम्राज्)।
(१२) अञ्—ऐक्ष्वाकः (इक्ष्वाकुः), आंगः (अङ्ग), वाङ्गः (वङ्ग), कालिङ्गः (कलिङ्ग)।

पञ्चमः पाठः

उपवनमें विहार करते दशरथ-पिता अजकी रानी इन्दुमतीका देहान्त किसी आकाशचारीके हाथसे गिरी पुष्पमालाके आघातसे हो गया। इसीका वर्णन कालिदासने निम्न प्रकार किया है—

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ?
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेद् अमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।। ४६ ।।

कृतवत्यसि नावधीरणां अपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।
कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ? ।। ४८ ।।

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसन्निवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ।। ४९ ।।

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ।
ननु शब्दपतिः क्षितेरहं त्वयि मे भावनिबन्धना रतिः ।। ५२ ।।

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्तकथं दुनोति माम् ।
निशि सुप्तमिवैकपङ्कजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम् ।। ५५ ।।

नवपल्लवसंस्तरेऽपि ते मृदु दूयेत यदङ्गमर्पितम् ।
तदिदं विषहिष्यते कथं वद वामोरु चिताधिरोहणम् ।। ५७ ।।

तव निःश्वसितानुकारिभिर्बकुलैरर्धचितां समं मया ।
असमाप्य विलासमेखलां किमिदं किन्नरकंठि सुप्यते ? ।। ६४ ।।

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतुनिरुत्सवः ।
गतमाभरणप्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे ।। ६६ ।।

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ॥ ६७ ॥
—रघुवंश, सर्ग ८

[यह माला यदि जीवन–अपहारक है, तो हृदयपर रक्खी मुझे क्यों नहीं मारती ? ईश्वरकी इच्छासे विष भी कहीं अमृत, या अमृत विष हो जाता है ॥४६॥

मेरे अपराधी होनेपर भी चिर तक जब तूने तिरस्कार नहीं किया, फिर इस निरपराध जनको एकदम न बोलने लायक कैसे मान लिया ? ॥ ४८ ॥

ओ शुद्ध मुसकानवाली, अवश्य मैं शठ, तेरे लिये धूर्तता-वत्सल प्रसिद्ध हूं । जो कि मुझे विना पूछे न लौटनेवाले परलोकको यहांसे तू चली गई ॥ ४९ ॥

मनसे भी मैंने (कभी) तेरा अप्रिय नहीं किया, फिर तू क्यों मुझे छोड़ रही है । निश्चय मैं नामका पृथिवी–पति हूं; मेरा प्रेम तो तेरेमें भाव–निबद्ध है ॥ ५२ ॥

यह हिलती अलकों वाला (पर) मूक तेरा मुख मुझे (वैसे ही) पीड़ित कर रहा है । जैसे भीतर भ्रमरका चुप स्वर रातमें सोये एक कमलमें ॥ ५५ ॥

तेरा मृदुल अङ्ग जो नवपल्लवके बिछौने पर रखनेपर भी दुःख अनुभव करता, सो यह हे सुजघने, बोल चितापर रखनेको कैसे सहेगा ? ॥ ५७ ॥

हे किन्नरोंके से कंठवाली, तेरी सांस (की सुगन्धि) का अनुकरण करनेवाली मौलसरी (के फूलों) से मेरे साथ आधी गूंथी शोभा-तगड़ीको विना समाप्त किये यह तू क्यों सो रही ॥ ६४ ॥

(मेरा) धैर्य अस्त, खेल छूटा, गान विरत और ऋतु उत्सव रहित हो गया । आभरणका प्रयोजन चला गया, आज मेरी शय्या बिल्कुल सूनी हो गई ॥ ६६ ॥

तुझ गृहिणी, सचिव, परस्पर सखी, ललित कलाके विधानमें प्रिय शिष्या को, हरते अकरुण मृत्युने बोल मेरा क्या नहीं हर लिया ? ॥ ६७ ॥]

स्रग् (माला) **जीवितापहा** (प्राणहर) **निहिता** (रक्खी) **हन्ति** (मारती है) **कृतवती** (किया) **अवधीरणा** (तिरस्कार) **अपराद्धः** (अपराधी) **एक-पदे** (एक दम) **निरागस्** (निरपराध) **आभाष्यं** (जिससे बोला जा सके) **ध्रुवं** (अवश्य) **शुचिस्मिता** (शुद्ध मुस्कानवाली) **कैतवः** (दगाबाजी) **वत्सलः** (कृपालु) **असन्निवृत्तिः** (न लौटना) **अनापृच्छ्य** (न पूछकर) **विप्रियं** (अप्रिय) **जहासि** (छोड़ती है) **शब्दपतिः** (बोलने भरका स्वामी) **क्षितिः**

(पृथिवी) **भावनिबन्धना** (हार्दिक) **रतिः** (प्रीति) **उच्छ्वसितं** (उठता, हिलता) **अलकः** (केश) **विश्रान्तकथं** (बोलनेसे विरत) **दुनोवि** (पीड़ा देता है) **आभ्यन्तरं** (भीतरी) **षट्पदः** (भ्रमर) **स्वनः** (आवाज) **संस्तरं** (बिस्तरा) **अर्पितं** (रक्खा) **विषहिष्यते** (सहेगा) **वामं** (सुन्दर) **ऊरु** (जांघ) **अधिरोहणं** (चढ़ना) **अनुकारी** (नकल) **बकुलः** (मौलसरी) **अर्धचिता** (आधी गूंथी) **विलासः** (केलि) **मेखला** (कमरकी तगड़ी) **किन्नरः** (हिमालयकी एक मधुरकंठी जाति) **सुप्यते** (सोया जाता है तुझसे, भाववाची) **धृतिः** (धैर्य) **रतिः** (खेल, प्रेम) **परिशून्यं** (नितान्त सूनो) **शयनीयं** (शय्या) **मिथः** (परस्पर) **करुणाविमुखः** (निष्ठुर)।

५. तद्धित (रक्त आदि अर्थवाले)—

(१३) **ठक्** (=इक)—**लाक्षया रक्तः** (लाहसे रंगा) **लाक्षिकः**, **रोचनिकः** (रोचना), **कार्दमिकः** (कर्दम, कीचड़)।

(१४) **इन्** (लपेटनेके अर्थमें)—**पाण्डुकम्बली** (दुशाला लपेटा, पांडुकंबल + इन्)।

(१५) **अण्** (समूहे)—**भैक्षं** (भिक्षाका समूह), **क्षैत्रं** (क्षेत्र), **कारीषं** (करीष, कंडा), **आङ्गारं** (अंगार)।

(१६) **यत्** (समूहे)—**ब्राह्मण्यं** (ब्राह्मणोंका समूह), **वाडव्यं** (वडवा, घोड़ी)।

(१७) **तल्** (समूहे)—**जनता, ग्रामता, बन्धुता**।

६. जिसे पढ़ता, जानता है, उससे—

(१८) **ठक्** (इक)—**वैदिकः** (वेद पढ़ने या जाननेवाला), **लौकायतिकः** (लोकायत शास्त्र), **नैयायिकः** (न्याय), **पौराणिकः** (पुराण), **याज्ञिकः** (यज्ञ), **नैमित्तिकः** (निमित्त, ज्योतिष), **वायसविद्यिकः** (वायसविद्या, कौआकी बोलीकी शकुन-विद्या), **आश्वलाक्षणिकः** (अश्वलक्षण), **सार्पविद्यिकः** (सर्पविद्या)।

(१९) **अण्—शातपथः** (शतपथ पढ़नेवाला), **कौथूमः** (कौथूमी)।

(२०) **वुन्** (=अक)-**क्रमकः** (क्रमवाला वेदपाठी), **पदकः** (पद), **मीमांसकः** (मीमांसा)।

लाक्षिकं दंडं ग्रहीत्वा तरुणः अधिनगरं गतः किम् ?—लाहसे रंगा डंडा ले
तरुण शहरमें गया क्या ?

पाण्डुकम्बली छात्रः अद्य कौशिकेन सह अध्ययनार्थं जिगमिषति—
दुशालेवाला विद्यार्थी आज कौशिकके साथ पढ़नेके लिये जाना चाहता है।

अस्मिन् कारीषे अग्निं प्रदाय इदानीमेव श्रावस्थेया दारका गताः—
इस कंडेके समूहमें आग लगाकर अभी-अभी श्रावस्थीवाले लड़के गये।

अस्यां छात्रतायां एके सोत्साहा अन्ये च मन्दोत्साहाः—इस छात्रसमूहमें
कोई उत्साही, दूसरे निरुत्साही (हैं)।

इत्थं करणं न तेषां मङ्गलकरम्—ऐसा करना उनके लिये मंगलकर नहीं (है)।

—•—

षष्ठः पाठः

राजा चन्द्र (शायद चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य-४१५ ई०) की विजयोंकी प्रशस्ति उसके उत्तराधिकारी ने विष्णुपदमें स्थापित अपने लोहस्तम्भपर उत्कीर्ण कराई थी, जिसे कालान्तरमें विष्णुपदसे अपनी राजधानी दिल्ली (महरौली) में लाकर अनंगपाने स्थापित किया। प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

यस्योद्वर्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून् समेत्यागतान्,
वंगेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।
तीर्त्वा सप्तमुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिकाः,
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्वीर्यानिलैर्दक्षिणः ॥ १ ॥
खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां,
मूर्त्त्या कर्मजितावनीं गतवतः कीर्त्त्या स्थितस्य क्षितौ।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्,
नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम् ॥ २ ॥
प्राप्तेन स्वभुजार्ज्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्यं क्षितौ,
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना धावेन विष्णौ मतिं,
प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः ॥ ३ ॥

—कुतुबमीनारमें लोहस्तम्भ।

[इकट्ठा होकर आये शत्रुओंको छातीसे उलटी ओर भगा वंगदेशके युद्धमें प्रवृत्त जिस (वीर) के खड्गने (अपने) भुजमें कीर्ति लिखी। सिन्धु (नदी) के सात मुहानोंको पारकर जिसने समरमें वाह्लीकोंको जीता। जिसके पराक्रम रूपी वायुसे आज भी दक्षिण समुद्र बसा हुआ है ॥ १ ॥

खिन्नसे हो पृथिवीको छोड़ दूसरी पृथिवी (स्वर्ग) का आश्रय लिये, देहसे कर्मद्वारा जीती पृथिवी (स्वर्ग) को गये, (पर) कीर्तिसे जो पृथिवीपर स्थित है, महावनमें शान्त होगई आगकी तरह जिसका महान् प्रताप, शत्रुनाशक प्रयत्न आज भी धरतीको नहीं छोड़ता है ॥ २ ॥

अपने भुजसे अर्जित पृथिवीपर चिरस्थायी एकाधिराज्यको प्राप्त, संपूर्ण चन्द्र-समान मुख-शोभाको धारण करते चन्द्र नामक उस शुद्ध राजाने विष्णुमें (अपना) मन एकाग्र कर, विष्णुपद पहाड़पर भगवान् विष्णुका ऊँचा ध्वज स्थापित किया ॥ ३ ॥]

तद्धित (पुनः)—

७. नदी आदिसे—

(२१) मतुप् (मत्, वत्)—इक्षुमती, पुष्करावती।

८. शैषिक—

(२२) खञ् (=ईन)—ग्रामीणः (गाँवका)।

(२३) य—ग्राम्यः।

(२४) ढक् (=इय)—नादेयः (नदी), माहेयः (मही), वाराणसेयः (बनारसी) श्रावस्थेयः, कौशाम्बेयः, कालिकातेयः, दैल्लेयः।

(२५) त्यक् (=त्य)—दाक्षिणात्त्यः, पाश्चात्त्यः, पौरस्त्यः।

(२६) यत् (=य)—प्राच्यः (पुरबिया), उदीच्यः (उत्तरी), प्रतीच्यः (पछिमा), अवाच्यः (उत्तरी)।

(२७) अव्ययसे त्यप् (=त्य)—इहत्यः, तत्रत्यः, अत्रत्यः, क्वत्यः (कहाँवाला), ततस्त्यः (तहांसेका), ऐषमस्त्यः (अबका), ह्यस्त्यः (कलवाला), श्वस्त्यः (बिहानवाला)।

(२८) वुञ् (=अक)—साङ्काश्यकः (संकिसा नगरवाला), कांपिल्यकः (कांपिल्य), ऐन्द्रप्रस्थकः (इन्द्रप्रस्थ), त्रैगर्त्तकः (कांगडावाला),

आङ्गकः (अंग), काशिकः (काशी), कालञ्जरकः (कालंजर),
साकेतकः (अयोध्या वाला), मासूरिकः (मसूरीवाला)।

तस्मिन् समये कौशाम्बेया भिक्षव अधिपाटलिपुत्रं केनाऽपि करणीयेन समागताः बभूवुः। स्वर्गे मातरं उपदिश्य यदा भगवान् अधिसंकाश्यं पृथिवीं अवततार, तदा साङ्काश्यकाः काम्पिल्यकाः साकेतकाः मागधकाश्च भिक्षवो गृहस्थाश्च भगवतो दर्शनार्थं आजग्मुः। दाक्षिणात्त्याः पाश्चात्त्या उदीच्या प्राच्याश्च सहस्रशो जना तत्र अदृश्यन्त।

[उस समय कौशाम्बीवाले भिक्षु पटनामें किसी करणीयसे आये थे। स्वर्गमें माता को उपदेश दे जब भगवान् संकाश्यमें पृथिवीपर उतरे, तब संकाश्य, कांपिल्य, साकेत, मगध वाले भिक्षु और गृहस्थ भगवान्के दर्शनार्थ आये थे। दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, पूर्व वाले हजारों लोग वहां दिखाई देते थे।]

सप्तमः पाठः

[कैकेयीके वनवासका वरदान मांग लेनेपर दशरथ विलाप करने लगे]।

"किं मां वक्ष्यन्ति राजानो नानादिग्भ्यः समागताः।
बालो बतायमैक्ष्वाकश्चिरं राज्यमकारयत्॥ १४॥
यदा हि बहवो वृद्धा गुणवन्तो बहुश्रुताः।
परिप्रक्ष्यन्ति काकुत्स्थं वक्ष्यामीह कथं तदा॥ १५॥
कैकेय्या क्लिश्यमानेन पुत्रः प्रव्राजितो मया।
यदि सत्त्यं ब्रवीम्येतत्तदसत्त्यं भविष्यति॥ १६॥
किं मां वक्ष्यति कौसल्या राघवे वनमास्थिते।
किं चैनां प्रतिवक्ष्यामि कृत्वा विप्रियमीदृशम्॥ १७॥
कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयमप्रियम्।
मां च पंचत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम्॥ २२॥
वैदेही बत मे प्राणाञ्छोचन्ती क्षपयिष्यति।
हीना हिमवतः पार्श्वे किन्नरेणेव किन्नरी॥ २३॥

यस्य चाहारसमये सूदाः कुंडलधारिणः।
अहंपूर्वाः पचन्ति स्म प्रसन्नाः पानभोजनम् ॥ ४६ ॥
स कथं नु कषायाणि तिक्तानि कटुकानि च।
भक्षयन् वन्यमाहारं सुतो मे वर्तयिष्यति ॥ ४७ ॥
धिगस्तु योषितो नाम शठाः स्वार्थपरायणाः।
न ब्रवीमि स्त्रियः सर्वा भरतस्यैव मातरम्" ॥ ५० ॥

(वाल्मीकि-रामायण, अयोध्याकांड)

[नाना दिशाओंसे आये राजा (लोग) मुझे क्या कहेंगे—अहो इस इक्ष्वाकुवंशीने चिरकाल तक राज्य किया, (पर) मूर्ख (है) ॥ १४ ॥

जब बहुतसे गुणी, बहुश्रुत, वृद्ध, ककुत्स्थवंशी रामके बारेमें पूछेंगे, तब कैसे बतलाऊंगा ॥ १५ ॥

कैकेयी द्वारा मजबूर किये जानेपर मैंने पुत्रको निर्वासित किया, यदि इस सच्चाईको बतलाऊं, (तो) असत्य होगा ॥ १६ ॥

राघव (राम) के वन चले जानेपर कौसल्या मुझे क्या कहेगी ? इस प्रकारके अप्रियको करके मैं इसे क्या उत्तर दूंगा ॥ १७ ॥

अहो, वैदेही कातर हो दो अप्रियोंको सुनेगी। मुझे मरा और रामको वनमें आश्रय लिये ॥ २२ ॥

अहो मेरी वैदेही शोक करती प्राणोंको (उसी तरह) खतम करेगी। जिस तरह हिमालयके पास किन्नरसे विहीन किन्नरी ॥ २३ ॥

जिस (राम) के आहारके समय कुंडलधारी रसोइये, 'मैं पहिले' (कहते) प्रसन्न हो भोज और पान पकाते थे ॥ ४६ ॥

वह मेरा पुत्र कैसे वनके कसैले, तीते, कड़वे वनके आहारको खाता वरतैगा ?॥

धिक्कार (है) स्त्रियोंको (जो) शठ और पापपरायण (होती हैं)। सभी स्त्रियोंको नहीं मैं केवल भरतकी मांको (यह) कहता हूं]।

बत (खेदप्रकाशक, हाय), **ऐक्ष्वाकः** (ईक्ष्वाकुगोत्री), **काकुत्स्थः** (ककुत्स्थगोत्री), **क्लिश्यमानः** (सताया), **प्रव्राजितः** (निर्वासित किया), **पंचत्वमापन्नं** (मृत), **अहंपूर्वाः** (मैं पहले कहते), **योषितः** (स्त्रियाँ), **शठः** (दुष्ट)।

तद्धित (पुनः)—

८. देश आदिसे—

(२९) अण्—काच्छः (कच्छवाला), सैन्धवः (सिन्धु), गान्धारः (गन्धार), काम्बोजः (कंबोज), साल्वः (साल्व), कौरवः (कुरुका)।

९. मनुष्य और उसकी भीतरी क्रियाओंके लिये—

(३०) वुञ् (अक)—काच्छकः, सैन्धवकः, वार्णवकः (बन्नूवाला), काम्बोजकः ।

(३१) छ (=ईय)—अंगीयः, वंगीयः, मगधीयः, पूर्वपक्षीयः, समानग्रामीयः, शैशिरीयः (शिशिर), वाल्मीकीयः, पर्वतीयः, अस्मदीयः ।

१०. कालसे—

(३२) ठ (=इक)-सांवत्सरिकं, मासिकं, सायंप्रातिकं, नैशिकं(निशाका)।

(३३) तनम्—सायन्तनं, चिरन्तनं, प्राह्णेतनं, दोषातनं (रातका)।

सैन्धवा अश्वा अतिचपलाः, सैन्धवं लवणं च पाषाणसदृशं—सिन्धी घोड़े बहु चपल और सेंधा नमक पत्थर जैसा ।

अननुरूपमेतद् सैंहलकस्य स्वभावस्य—यह सिंहाली स्वभावके अनुकूल नहीं।

दृष्टा भवता बुद्धघोषीया अर्थकथा ?—देखी आपने बुद्धघोषीय अर्थकथा (महाटीका) ?

युष्मदीयस्य पर्वतीयस्य भृत्यस्य वेतनं किम् ?—आपके पहाड़ी नौकरका वेतन क्या (है) ?

अष्टमः पाठः

नमो विद्याविहीनाय वैद्यायावद्यकारिणे ।
निहतानेकलोकाय सर्पायेवापमृत्यवे ॥ ६८ ॥

भ्रान्तो गृहशतं तूर्णं भाराक्रान्त इवोच्छ्वसन् ।
ललाटस्वेदसलिलं पाणिना विक्षिपन् मुहुः ॥ ६९ ॥

चिकित्सकोऽर्थप्राणानां व्याधीनामचिकित्सकः ।
आजीवमीश्वरः शूली येन न त्यज्यते जनः ॥ ७१ ॥

स वैद्यः कालकूटो वा व्यालो वेताल एव वा।
भूयसा याति मांसेन यः क्षिप्रं अनुकूलताम्॥ ७२॥
विद्याविरहिता वैद्याः कायस्थाः प्रभविष्णवः।
दुराचाराश्च गुरवः प्रजानां क्षयहेतवः॥ ७७॥

(नर्ममाला, क्षेमेन्द्र)

[विद्या-विहीन, दोषकारी, अनेक लोगोंको निहत किये सर्प जैसे अकाल मृत्यु (रूपी) वैद्यको नमस्कार॥ ६८॥

जल्दी-जल्दी सैकड़ों घर घूमे भारसे दबे जैसे लंबी सांस लेते, ललाटके पसीनेके पानीको हाथसे बार-बार फेंकते॥ ६९॥

धन और प्राणकी चिकित्सा करनेवाले, रोगोंके अचिकित्सक, शूलधारी जिस (वैद्य) द्वारा धनी जीवन भर नहीं छोड़े जाते॥ ७१॥

वह वैद्य है या कालकूट या सांप या वैताल, जो कि अधिक मांस (खिलाने) से जल्दी अनुकूल हो जाता है॥ ७२॥

विद्याहीन वैद्य, जबर्दस्त कायस्थ (क्लर्क), और दुराचारी गुरु जनताके क्षयकारक हैं॥ ७७॥]

तद्धित (पुनः)—

११. जहांसे आया, गया, उत्पन्न, पथ और दूतके लिये—

(३४) अण्—रौहणः, मागधः।

(३५) वुञ् (=अक)—पाटलिपुत्रकः, माथुरकः।

(३६) उसका भक्त (=उपासक)—वासुदेवकः—(वासुदेवभक्त), अर्जुनकः (अर्जुनभक्त)।

१२. कालसे—

(३७) अण्—ग्रैष्मं, वासन्तम्।

(३८) वुञ् (=अक)—ग्रैष्मकं, वासन्तकम्।

१३. संबंधे—

(३९) छ (=ईय)—अंगुलीयं, कवर्गीयं, मद्वर्गीयः।

१४. अलंकारे—

(४०) कन्—कर्णिकं, ललाटिका (ललाटका आभूषण)।

१५. अन्य—

(४१) अण् (संबंधे)—औपनिषदः, वैयाकरणः, नैरुक्तः, नैगमः, कापिलः, औपलं (पत्थरका), भौमं, तार्णं (तृणका), पैप्पलं (पीपलका), बैल्वं, वैणवं, सौवर्णं, राजतं, मासूरं, मौद्गम्।

(४२) ठञ् (=क) (ऋकारान्तसे)—मातृकं, पैतृकं, भ्रातृकं, हौतृकम्।

(४३) अञ् (विकारे)—दैवदारवं, कापित्थं, पालाशं, खादिरं, शैरीषम्।

(४४) मयट् (विकारे)—अश्ममयं (पत्थरका), सुवर्णमयं, मृण्मयम् (मिट्टीका)।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्—सुनहले पात्रसे सत्यका मुंह छिपा है।

दैवदारवं फलकं अतिदृढं अकृमिभक्ष्यं चिरं न जीर्यति—देवदारका तख्ता बहुत मजबूत कीटसे न खा सका जानेवाला चिरकालतक जीर्ण नहीं होता।

अधिरोगं मौद्गं यूषं पथ्यं—रोगमें मूगका रस पथ्य है।

प्राकृतभाषाया वाररुचं व्याकरणं—प्राकृत भाषाका वररुचिनिर्मित व्याकरण।

रौहणः सीवलिः महातीर्थकश्च प्रेमरत्नः अतिरमणीये वासन्तके दिने पठनतत्परौ—रोहणवासी, सीवलि और मातरनिवासी प्रेमरत्न अतिरमणीय वसन्तके दिनमें पढ़ाईमें तत्पर हैं।

नवमः पाठः

अहं सुह्मेषु दामलिप्ताह्वयस्य नगरस्य बाह्योद्याने महान्तं उत्सवसमाजं आलोकयम्। तत्र क्वचिद् अतिमुक्तकलतामंडपे कमपि वीणावादेन आत्मानं विनोदयन्तं युवानं अद्राक्षम्, प्राक्षञ्च 'भद्र, को नामा अयमुत्सवः, केन वा निमित्तेन उत्सवं अनादृत्य एकान्ते परिवादिनीद्वितीयस्तिष्ठसि ?'

'सौम्य, सुह्मपतिः तुंगधन्वा अनपत्यः प्रार्थितवान् अमुष्मिन् आयतने वसन्त्या विन्ध्यवासिन्याः पादमूलाद् अपत्यद्वयम्। स्वप्ने च देव्या समादिष्टं—'समुत्पत्स्यते तवैकः पुत्रः, जनिष्यते चैका दुहिता। स तु तस्याः पाणिग्राहकं अनुजीविष्यति। सा तु सप्तमाद् वर्षाद् आरभ्य आपरिणयनात् प्रतिमासं कृत्तिकासु कन्दुकनृत्येन गुणवद्भर्तृलाभाय मां

समाराधयतु । यच्चाभिलषेत् तत् अमुष्मै देयम् । स चोत्सवः कन्दुकोत्सवनामाऽस्तु ।' ततोऽल्पीयसा कालेन राज्ञः प्रियमहिषी मेदिनी नाम एकं पुत्रं असूत, समुत्पन्ना च एका दुहिता । सा अद्य कन्या कन्दुकावती देवीं कन्दुकविहारेण आराधयिष्यति । तस्यास्तु सखी चन्द्रसेना नाम धात्रेयिका मम प्रिया । सा चैषु दिनेषु राजपुत्रेण भीमधन्वना बलवद् अनुरुद्धा । तदहं उत्कंठितः दुःखोद्विग्नचेताः कलेन वीणारवेण आत्मानं किंचिद् आश्वासयन् अध्यासे ।'

(दशकुमारचरित, उत्तरपीठिका, उच्छ्वास ६)

[मैं सुह्मदेशके तमलुक नामक नगरके बाहरी उद्यानमें एक बड़े मेलेको देख रहा था । वहां मोतियोंके लतामंडपमें वीणा बजाके अपना विनोद करते किसी तरुणको मैंने देखा और पूछा—'भद्र, इस मेलेका नाम क्या है ? किस कारण इस उत्सवको छोड़ एकान्तमें वीणा साथ लिये तुम रह रहे हो ?'

'मित्र, सुह्मके निःसन्तान राजा तुंगधन्वाने उस मन्दिरमें बसती विन्ध्यवासिनी (देवी) से दो बच्चों(के पाने) की प्रार्थना की और देवीने स्वप्नमें आदेश दिया—होगा तेरे एक पुत्र और उत्पन्न होगी एक कन्या । वह (पुत्र) उस (कन्या) के पतिका अनुजीवी होगा। वह (कन्या)सातवें वर्षके आरंभसे विवाहके समय तक प्रतिमास कृत्तिका नक्षत्रमें कन्दुक नृत्यद्वारा मेरी आराधना करे । जो वह चाहे सो उसे देना । वह उत्सव कन्दुक नामक होवे' । तब थोड़े समयमें राजाकी मेदिनी नामक प्रिय रानीने एक पुत्र जना और (फिर) एक पुत्री जनी । वह कन्या कन्दुकावती आज कन्दुक-लीलासे आराधना करेगी, धाईकी बेटी उसकी चन्द्रसेना नामक सखी मेरी प्रिया है । वह इन दिनों राजकुमार भीमधन्वा द्वारा जबर्दस्ती रोक ली गई है । सो मैं शोकाकुल, दुःखसे उद्विग्नचित्त हो कोमल वीणास्वरसे अपनेको कुछ आश्वासन देते बैठा हूं ।]

सुह्माः (पश्चिमी बंगालका राढ देश), **दामलिप्त** (ताम्रलिप्त, तामलुक, जिला मेदिनीपुर), **उत्सवसमाजः** (मेला), **अतिमुक्तकं** (मोतिया), **युवा** (तरुण), **अप्राक्षं** (मैंने पूछा), **परिवादिनी** (वीणा), **परिवादिनीद्वितीयः** (वीणा है दूसरी साथिन जिसकी), **अमुष्मिन्** (इसमें), **पाणिग्राहकः** (पति, वर), **गुणवर्द्धता** (गुणी पति), **धात्रेयिका** (धाईकी बेटी), **अनुरुद्धा** (रोक ली गई) **कलं** (कोमल), **अध्यासे** (बैठा हूँ)।

१६. तद्धित (पुनः)—

(४५) ठक् (=इक)—स्वागतिकः (स्वागत करनेवाला), खाड्गिकः, व्यावहारिकः, पारदारिकः (परस्त्रीगामी)। (उससे पकाया)—दाधिकं (दहीमें पकाया), (उसके द्वारा चलता)—हास्तिकः (हाथी द्वारा), शाकटिकः, वैमानिकः ।

(४६) ठन्—नाविकः ।

(४७) ठञ् (उसके द्वारा जीता)—वैतनिकः (वेतनसे जीता), वाहनिकः।

(४८) ठन् (")—क्रयिकः, विक्रयिकः, आयुधिकः ।

(४९) वालाके अर्थमें, ठक्—आनुलोमिकः, प्रातिलोमिकः, आनुपूर्विकः, त्रैगुणिकः, द्वैगुणिकः ।

(५०) ठक् (वह इसका पण्य है)—आपूपिकः, लावणिकः ।

(५१) इष्ठन् (वाला)—कुसीदिकः (सूदखोर)।

" (रखता है)—सामाजिकः (समाज रखनेवाला)।

" (करता है)—शाब्दिकः ।

" (उसे मारता)—पाक्षिकः, शाकुनिकः, मायूरिकः, शौकरिकः, मात्सिकः, मैनिकः, मार्गिकः (मृग), हारिणिकः (हरिन)।

(५२) ठक् (उसका व्यवसाय)—मार्दङ्गिकः, वैणविकः, पाणविकः ।

अतिस्वागतिका नागरिकाः । दाधिकः ओदनः स्वादुतरः—शहरवाले बड़े स्वागत करनेवाले । दहीमें पका भात अधिक स्वादु होता है ।

अतिमारिचिकाः सैंहलाः द्रविडाश्च—सिंहली और तमिल लोग बहुत मिरच (खाने) वाले (होते)।

अनश्वरथेन शाकटिका नष्टाः—मोटरसे गाड़ीवाले मारे गये ।

यात्रोत्सवेषु आपूपिकाः सर्वत्र दृश्यन्ते—मेलोंमें सर्वत्र हलवाई दीखते हैं।

शाकुनिका मायूरिकाः शौकरिका दिवानिशं प्राणान् घ्नन्ति—०रात दिन प्राणी मारते हैं ।

मार्दङ्गिक-वैणविक-पाणविकं वादयति वाद्यं—मृदङ्गी-बंसी-ढोलकी बाजे बजाते हैं ।

दशमः पाठः

स्वस्ति श्रीमत्कार्तिकेयपुरात् सकलामर-दितितनुज-मनुज-विभु-भक्तिभावभरभारानमितोत्तमांग-संगि-विकट-मुकुटकिरीट-त्रिटङ्क-कोटि-कोटिशोऽनेकनाना-नायक-प्रदीपदीधितिपान-मद-रक्त-चरणकमल-विपुल-किरण-केशरासार-सारिताशेष-विशेष-मोषि-घनतमस्तेजसः भगवतो धूर्जटेः प्रसादात् गुणगणालंकृतशरीरः कृतयुगागमभूपाललसितकीर्तिः नन्दाभगवतीचरणकमलकमलासनाथमूर्तिः श्रीनिम्बरः, तस्य तनयः तत्पादानुध्यातः राज्ञी श्रीनाशूदेवी, तस्यां उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः परमभट्टारकमहाराजाधिराज-परमेश्वर-श्रीमद् इष्टगणदेवः, तस्य पुत्रः राज्ञी महादेवी श्रीवेगदेवी, तस्यां उत्पन्नः परममाहेश्वरः परमभट्टारकः-श्रीमल्ललितशूरदेवः कुशली अस्मिन्नेव श्रीमत्कार्तिकेयपुरविषये समुपागतान् अस्मत्पादोपजीविनः प्रतिवासिनश्च बोधयति समाज्ञापयति-'अस्तु वः संविदितं-उपरिनिर्दिष्टविषये गोरुन्नासायां खषियाक-परिभुज्यमानपल्लिका तथा पणिभूतिकायां गुग्गुलपरिभुज्यमानपल्लिकाद्वयं एते मया मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये गोरुन्नासायां महादेवीश्रीसामदेव्या स्वयङ्कारापितभगवते श्रीनारायणभट्टारकाय शासनदानेन प्रतिपादिताः, अकिञ्चित्प्रग्राह्या अनाच्छेद्या' इति प्रवर्धमानविजयराज्यसंवत्सर एकविंशतितमे २१ माघवदि दूतकोत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीमदार्यटवतुना। टङ्कोत्कीर्णा श्रीगङ्गभद्रेण।

> बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
> यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलम् ॥
> स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
> षष्टिवर्षसहस्राणि श्वविष्ठयां जायते कृमिः ॥

इति कमलदलोदविन्दुलोलमिदं अनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च ।
सकलमिदं उदाहृतं च बुद्ध्वा नहि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः ॥

(राजमुद्रायां)—

> श्रीनिम्बरस् तत्पादानुध्यातः ।
> श्रीमदिष्टगणदेवः तत्पादानुध्यातः ॥
> श्रीमल्ललितशूरदेवः क्षितीशः ।

आठवीं या नवीं सदीमें कुमायूं-गढ़वालके कतूरी राजा ललित शूरदेवका यह तांबेका शासनपत्र बदरीनाथ मन्दिर कमीटीके पास है, जिसका अर्थ है—

[स्वस्ति श्रीमत् कार्तिकेयपुरसे सारे देव-दैत्य-मनुष्यके विभुकी भक्ति-भावके भारसे झुक गये सिरोंके मुकुट-किरीटकी वेदीके कोनेके, करोड़ों अनेक नाना नायक प्रदीपोंके प्रकाशके पान रूपी मद द्वारा रक्त चरणकमलके, विपुल किरणके कुमकुम-छींटोंके बिखरावसे सारे घने अन्धकारके विशेष तौरसे हारक तेजवाले, भगवान् शङ्करकी कृपासे गुण समूहसे अलंकृत शरीरवाले, सतयुगमें हुये राजाओंकी ललित कीर्तिवाले, नन्दा भगवतीके चरणकमलकी लक्ष्मी से संयुक्त शरीर वाले, श्रीनिम्बर (हुये)। उनके पुत्र उनके चरणानुरागी रानी श्रीनाशूदेवी (थीं), उनमें उत्पन्न परम शैव परमब्राह्मणभक्त परमप्रभुत्वसम्पन्न महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमान् इष्टगण देव (हुये), उनके पुत्र रानी महादेवी श्रीवेगदेवी (थीं ।) उनमें उत्पन्न परमशैव परमभट्टारक श्रीमान् ललितशूर देव कुशलपूर्वक (हैं ।) (वह) इसी कार्तिकेय-पुर जिलेमें आये हमारे चरण-सेवक और निवासियोंको जतलाते आज्ञा देते हैं— 'तुम्हें विदित हो, कि उपर्युक्त जिलाकी गोरुन्नासामें खसिया (लोगों) द्वारा उपभोग की जाती पल्लिका (गांव) तथा पणिभूतिकामें गुग्गुल लोगों द्वारा भोगी जाती दो पल्लिकायें (गांव)—ये (तीनों) पल्लिकायें मैंने, माता-पिता और अपने पुण्य तथा यशकी वृद्धिके लिये गोरुन्नासामें महादेवी श्रीसामदेवी द्वारा स्वयं बनवाये भगवान् श्रीनारायण स्वामीके लिये न-कुछ-लेने-लायक न-छीनने-लायक करके शासनदान द्वारा दे दीं । इति । (ललितशूर के) बढ़ा हुआ विजयी राज्यवत्सर (गद्दीका सन्) २१ वां माघ बदी ··(।) इस (शासन पत्रको ले जाने वाले) दूतक (हैं) दानमहाविभागके अफसर श्रीमान् आर्यटवतु, (ताम्रपत्र) उत्कीर्ण किया गया श्री गङ्गभद्र द्वारा ।

सगर आदि बहुतसे राजाओंने वसुधाको भोगा । जब जिस-जिसकी भूमि रही, तब उसी-उसी को फल (पुण्य मिला)।

अपनी दी या परकी दी हुई धरतीको जो हरे । (वह) साठ हजार वर्ष कुत्ते की विष्ठामें कीडा होता है ।

यों कमलके पत्ते परके पानीके विन्दुसा चञ्चल मनुष्य जीवन समझ ।

इस सारे उदाहरणको जान आदमियोंको दूसरेकी कीर्तिलोप नहीं करनी चाहिये (ताम्रशासनकी मुहरपर लिखा है)—

श्रीनिम्बर, उनके चरणानुरागी
श्रीमदिष्टगणदेव, उनके चरणानुरागी
श्रीमान् ललितशूरदेव क्षितीश ।]

तद्धित (पुनः)—

१७. उसके योग्य :

(५३) यत्—रथ्यः, युग्यः (वृषभः) ।
(५४) ख (=इन)—धुरीणः ।
(५५) अण्—शाकटः ।
(५६) ठक् (=इक)—हालिकः, सैनिकः ।
(५७) यत् (पाकर)—धन्यः, गण्यः । धर्म्यं, पथ्यं, तुल्यं ।
(५८) यत् (उसके लिये)—गार्हपत्यः ।
(५६) यत् (उसके लिये)—दन्त्यं, कंठ्यं, नाभ्यं, खल्यं (खलिहानका), भाष्यं, तिल्यं, रथ्या ।
(६०) ख (=ईन)—विश्वजनीनं, सर्वजनीनं ।

१८. उससे खरीदा, उसके लिये, उसका कोप आदि—

(६१) अण्—शातमान (सौ मानसे खरीदा), साहस्रं ।
(६२) ठञ् (=इक)—साप्ततिकं, प्रास्थिकं ।
(६३) ठञ् (=कोप)—वातिकं, पैत्तिकं, श्लैष्मिकं, सान्निपातिकम् ।
(६४) छ (=ईय्)—पुत्रीयः ।
(६५) यत्—पुत्र्यः ।
(६६) अण्—सार्वभौमः, पार्थिवः ।

—+—

एकादशः पाठः

(दुष्यन्तके दरबारमें शकुन्तलाको लिये ऋषिलोग पहुँचे)—

प्रतीहारी—सुचरितनन्दिन ऋषयो देवं संभावयितुं आगताः ।

(ततः प्रविशति गौतमीसहिताः शकुन्तलां पुरस्कृत्य मुनयः पुरश्चैषां कंचुकी पुरोहितश्च)

कंचुकी—इत इतो भवन्तः ।

शार्ङ्गरवः—शारद्वत, महाभागो नरपतिः हुतवहपरीत गृह इव ।

शारद्वतः—जाने भवान् पुरप्रवेशाद् इत्थंभूतः संवृत्तः ।

शकुन्तला—(निमित्तं सूचयित्वा) अहो, किं मे वामेतरन्नयनं विस्फुरति ?

गौतमी—जाते, प्रतिहतं अमङ्गलम् । सुखानि ते भर्तृकुलदेवता वितरन्तु ।

पुरोहितः—(राजानं निर्दिश्य) भो तपस्विनः, असौ अत्र भवान् वर्णाश्रम-धर्माणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो भवन्तं प्रतिपालयति । पश्यत एनम् ।

शार्ङ्गरवः—भो महाब्राह्मण, कामं एतदभिनन्दनीयं, तथापि वयमत्र मध्यस्थाः । कुतः ?

भवन्ति नम्राः तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलंबिनो घनाः ।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥

राजा—(शकुन्तलां दृष्ट्वा) अथात्र भवती । भवतु,अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।

शकुन्तला—(हस्तमुरसि कृत्वा आत्मगतं) हृदय, किमेवं वेपसे ? आर्यपुत्रस्य भावमवधार्य धीरं तावद् भव ।

ऋषयः—(हस्तानुद्यम्य) विजयस्व राजन् ।

राजा—सर्वान् अभिवादये ।

मुनयः—इष्टेन युज्यस्व ।

राजा—अथ भगवाँल्लोकानुग्रहाय कुशली कण्वः ?

ऋषयः—स्वाधीनकुशलाः सिद्धिमन्तः । स भवन्तं अनामयप्रश्नपूर्वक-मिदमाह ।

राजा—किमाज्ञापयति भगवान् ?

शार्ङ्गरवः—यत् मिथः समयाद् इमां मदीयां दुहितरं भवान् उपायंस्त, तन्मया प्रीतिमता युवयोरनुज्ञातम् । तद् इदानीं आपन्नसत्त्वा प्रतिगृह्यतां सहधर्मचरणायेति ।

शकुन्तला—(आत्मगतं) किं नु आर्यपुत्रो भणति ?

राजा—किमिदं उपन्यस्तम् ?

शकुन्तला—(आत्मगतं) पावकः खलु वचनोपन्यासः ।

राजा—किं चात्र भवती मया परिणीतपूर्वा ?

शकुन्तला—(सविषादं, आत्मगतम्) सांप्रतं त आशंका ।

गौतमी—जाते, मुहूर्तं मा लज्जस्व । अपनेष्यामि तावत् तेऽवगुंठनम् । ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति ।

राजा—(शकुन्तलां निर्वर्ण्य आत्मगतम्)

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्तिः,
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन् ।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं,
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम् ॥

(इति विचारयन् स्थितः)

शार्ङ्गरवः—भो राजन् , किमिति जोषमास्यते ?

राजा—भोः तपोधनाः, चिन्तयन्नपि न खलु स्वीकरणमत्र भवत्याः स्मरामि । कथं इमां प्रतिपत्स्ये ?

शकुन्तला—(अपवार्य) आर्यस्य परिणय एव संदेहः कुत इदानीं मे दूराधिरोहिण्याशा ?

शार्ङ्गरवः—शकुन्तले, सोऽयमत्र भवान् एवमाह । दीयतां अस्मै प्रत्यय-प्रतिवचनम् ।

शकुन्तला—(अपवार्य) इदं अवस्थान्तरगते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन ? (प्रकाशं) आर्यपुत्र, (इति अर्धोक्ते) संशयित इदानीं परिणये नैष समुदाचारः । पौरव, न युक्तं नाम ते तथा पुरा आश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयं इमं जनं समयपूर्वं प्रतार्य ईदृशैरक्षरैः प्रत्याख्यातुम् ?

राजा—(कर्णौ पिधाय) शान्तं पापम् !

व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम् ।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भः तटतरुं च ॥

शकुन्तला—भवतु, यदि परमार्थतः परपरिग्रहशंकिना त्वया एवं वक्तुं प्रवृत्तं, तद् अभिज्ञानेन तवाशंकां अपनेष्यामि ।

राजा—उदारः कल्पः ।

शकुन्तला—(मुद्रास्थानं परामृश्य) हा धिक्, अंगुलीयकशून्या मेऽङ्गुलिः (इति सविषादं गौतमीं अवेक्षते) ।

(यहां शब्दके अर्थ मात्र दिये जाते हैं, बाकी सुगम है)

प्रतीहारी (अंगरक्षक) सुचरितानन्दी (सदाचारसे खुश होने वाला) पुरस्कृत्य (आगे कर) संभावयितुं (सम्मान करने को) कंचुकी (रनिवासका वृद्ध ब्राह्मण) इत इतः (इधरसे) भवन्तः (आप सब) हुतवहपरीतः (आगसे घिरा) इत्थंभूतः (ऐसा) संवृत्तः (हो गया) निमित्तं (सगुन) वामेतरः (दाहिना) जाता (पुत्री) प्रतिहतः (नष्ट) वितरन्तु (देवें) निर्दश्य (दिखा कर) प्रागेव (पहिलेसे ही) मुक्तासनः (आसन छोड़े) प्रतिपालयति (प्रतीक्षा करती है) कामं (भली प्रकार) अभिनन्दनीयं (अभिनंदनयोग्य) मध्यस्थः (अभिनन्दन और अनभिनन्दनसे परे, तटस्थ) फलागमः (फलका आना) नवाम्बु (नवीन जल) दूरविलंबिनः (दूर लटकनेवाले) घनः (मेघ) अनुद्धतः (न उच्छृंखल) समृद्धिः (संपत्ति) भवती (आप) अनिर्वर्णनीयं (न देखने योग्य) कलत्रं (पत्नी) आत्मगतं (अपने आपसे बोलना) वेपसे (तू कांपता है) आर्यपुत्रः (पति) अवधार्य (जान कर) उद्यम्य (उठा कर) विजयस्व (विजयी हो) अभिवादये (मैं अभिवादन करता हूं) इष्टं (अभिलषित) युज्यस्व (युक्त हो) कुशली (कुशल-पूर्वक) स्वाधीनकुशलाः (अपने अधीन कुशल जिनका) सिद्धिमन्तः (सिद्धिवाले) अनामयं (नीरोग) मिथः (परस्पर) समयः (कौलकरार) उपायंस्त (ब्याहा)प्रीतिमान् (प्रसन्नतापूर्वक) अनुज्ञातं (अनुमति दी) आपन्नसत्त्वा (गर्भिणी) प्रतिगृह्यतां (ग्रहण करें) उपन्यस्तं (कहा) उपन्यासः (कहना) परिणीतपूर्वा (पहिले ब्याही) सांप्रतं (इस समय) अवगुंठनं (घूंघट) अभिज्ञास्यति (पहचानेगा) उपनतं (पास आया)

अक्लिष्टं (शुद्ध) परिगृहीतं (ग्रहण किया गया) व्यवस्यन् (सोचता विभातं (प्रभात) कुन्दमन्तः (कुन्दके भीतर) तुषारः (शीतकण) परिभोक्तुं (भोगनेको) हातुं (छोड़नेको) किमिति (क्यों) जोषं (चुप) आस्यते (हैं, भावे) प्रतिपत्स्ये (स्वीकार करूँगा) परिणयः (व्याह) दूराधिरोहिणी (दूरकी सीढ़ी) प्रत्ययः (विश्वास) प्रतिवचनं (उत्तर) अपवार्य (धीरे बोलना) अवस्थान्तरगतं (दूसरा ही हो गया) स्मारितं (याद दिलाना) अर्धोक्तं (आधा कहा) समुदाचारः (व्यवहार, आर्यपुत्र कहनेका) पुरा (पहिले) स्वभावोत्तानं (स्वभावसे खुला) प्रतार्य (धोखा दे कर) प्रत्याख्यातुं (इन्कार करनेको) शान्तं पापं (घोर पाप !) व्यपदेशः (नाम) आविलयितुं (मलिन करनेको) ईहसे (तू चाहती है) पातयितुं (पतित करनेको) कूलंकषा (तट तोड़नेवाली) सिन्धुः (नदी) प्रसन्नं (स्वच्छ) अम्भः (जल) तटतरुः (तटवर्ती वृक्ष) परमार्थतः (वस्तुतः) परपरिग्रहः (दूसरेका ग्रहण किया) प्रवृत्तं (शुरू किया) अभिज्ञानं (स्मारक, चिह्न)) उदारः कल्पः (बहुत खूब) मुद्रा (मुंदरी) अंगुलीयकं (अंगूटी) अवेक्षते (ताकती है)। तद्धित (पुनः)—

१६. मात्रा, भार आदि ।

(६७) ठञ् (वहा ज्ञात)—सार्वलौकिकः, लौकिकः ।

" (उतने की बुवाईवाला)—प्रास्थिकं (प्रस्थ), द्रौणिकः, (द्रोण) खारीकं (खारी भर बीज बोया जानेवाला खेत)।

(६८) ठन् (उसे ले जाता है)—वांशभारिकः, ऐक्षुभारिकः, वांशिकः, ऐक्षुकः, खाड्गिकः (खड्ग साथ ले जानेवाला)।

ठन् (उस परिमाणमें पकता आदि)—प्रास्थिकः कटाहः, सैरिका स्थाली (सेर भरकी बटली), प्रास्थिकः पाचकः (पाथी भर पकानेवाला रसोइया)।

(६९) कन् (वेतनवाला)—पंचकः (पांच रुपयेवाला), सप्तकः, शतकः ।

(७०) ठञ् (वर्तने, जानेवाला)—पारायणिकः, चान्द्रायणिकः, सांशयिकः (संशय करनेवाला), योजनिकः (योजन भर जानेवाला)।

ठञ् (लाभ, कार्य)—मासिको व्याधिः, मासिकं कार्यम् ।

" (उतने समयका व्रत)—मासिको भिक्षुः, वार्षिकः श्रामणेरः ।

उद्योगेन कार्यसिद्धिरिति सार्वलौकिको नियमः। शाकभारिका अधिरथ्यं व्रजन्ति—प्रयत्नसे कार्य की सिद्धि होती है, यह सार्वलौकिक नियम है। साग ढोनेवाले सड़कपर जाते हैं।

प्रास्थके कटाहे अपूपं पक्त्वा स प्रास्थिकः पाचकः प्रास्थिकाय पुरुषाय ददाति—पाथीभरवाली कड़ाहीमें पूवा पकाकर उस पाथीभर पका सकनेवाले रसोइयेने पाथीभर खानेवाले पुरुषको दिया।

सांशयिकः न क्षेमं विन्दति—संशयालु कल्याण नहीं पाता।

मासिकः श्रामणेरः स्थविरं अचूचुदत्—महीने भरके श्रामणेरने स्थविरको प्रतारा।

खारीकं शालिक्षेत्रं संघाय प्रादात्—खारीभरका धानका खेत संघको दिया।

द्वादशः पाठः

(अर्जुन तपस्याके लिये हिमालय जाते हैं)

अथ जयाय नु मेरुमहीभृतो रभसया नु दिगन्तदिदृक्षया।
अभिययौ स हिमाचलमुच्छ्रितं समुदितं नु विलंघयितुं नभः॥ १॥
तपनमंडलदीपितमेकतः सततनैशतमोवृतमन्यतः।
हसितभिन्नतमिस्रचयं पुरः शिवमिवानुगतं गजचर्मणा॥ २॥
अविरतोज्झितवारिविपाण्डुभिर्विरहितैरचिरद्युतितेजसा।
उदितपक्षमिवारतनिःस्वनैः पृथुनितम्बविलम्बिभिरम्बुदैः॥ ६॥
नवविनिद्रजपाकुसुमत्विषां द्युतिमतां निकरेण महाश्मनाम्।
विहितसांध्यमयूखमिव क्वचिन्निचितकांचनभित्तिषु सानुषु॥ ८॥
ससुरचापमनेकमणिप्रभैरपपयोविशदं हिमपाण्डुभिः।
अविचलं शिखरैरुपबिभ्रतं ध्वनितसूचितमम्बुमुचां चयम्॥ १२॥
विकचवारिरुहं दधतं सरः सकलहंसगणं शुचिमानसम्।
शिवमगात्मजया च कृतेर्ष्यया सकलहं सगणं शुचिमानसम्॥ १३॥
विततशीकरराशिभिरुच्छ्रितैरुपलरोधिविवर्तिभिरम्बुभिः।
दधतमुन्नतसानुसमुद्धतां धृतसितव्यजनामिव जाह्नवीम्॥ १५॥

रुचिरपल्लवपुष्पलतागृहैरुपलसज्जलजैर्जलराशिभिः ।
नयति संततमुत्सुकतामयं धृतिमतीरुपकान्तमपि स्त्रियः ॥ १९ ॥
(किरातार्जुनीय (भारवि) सर्ग ५)

[तब जल्दीसे मेरुपर्वतके विजयके लिये, दिशाओंके दर्शनकी इच्छासे, वह (अर्जुन) मानो आकाशको उल्लंघित करनेको अवस्थित ऊँचे हिमालयकी ओर गया ॥ १ ॥

जो एक ओर सूर्यमंडल से प्रकाशित दूसरी ओर सदा रातके अन्धकारसे ढंका। हाससे अन्धकारसमूहको छिन्नकिये सामने गजचर्मसे पीछे ढंके शिव जैसे (हिमालयकी ओर) ॥ २ ॥

निरन्तर छोड़े जाते जलसे पीले, विजलीके तेजसे रहित, ध्वनिविरत स्थूल लटकते पिछले भागवाले मेघोंसे उगे पक्षवाले (हिमालयकी ओर) ॥ ६ ॥

कहीं पर सोना जड़ी भीतवाले पर्वतपादोंमें द्युतिमान् अभिनव फूले अड़हुल-फूलकी किरणोंके समूह द्वारा महापत्थरोंको संध्याकी किरणोंसे वनाये से (हिमालयको) ॥ ८ ॥

हिमसे श्वेत इन्द्रधनुष, अनेकमणिकी प्रभाओंवाले ध्वनिसे सूचित मेघोंके समूहको (अपने) शिखरों द्वारा धारण किये निर्जल-विशद निश्चल (हिमालयको)॥१२॥

कलहंसगणसहित और फुल्लकमलवाले शुद्ध मानससरको धारण किये (हिमालयको), (मानो) कलह–ईर्ष्यावाली गिरिजाके साथ, गणोंके साथ शुद्धमनवाले शिवको ॥ १३ ॥

(अपने) पत्थरकी रुकावटसे घूमते फैले शीकर राशिवाले ऊँचे (गिरते) जलों द्वारा उन्नत सानुओंमें बहती गंगाको श्वेत व्यजनकी तरह धारण किये (हिमालयको गया) ॥ १५ ॥

(जो हिमालय अपने) सुन्दर पल्लवों पुष्पों लतागृहों, पाषाण और अच्छे कमलोंवाले जलाशयों द्वारा पतिके पास रहती धीर स्त्रियोंको भी सदा उत्कंठित कर देता है ॥ १९ ॥

जयाय (जयके लिये) **मेरुः** (सुमेरु) **महीभृत्** (पर्वत) **रभसा** (सहसा) **दिदृक्षा** (देखनेकी इच्छा) **अभिययौ** (पास गया, लिट्) **उच्छ्रितं** (ऊँचा) **समुदितं** (अवस्थित) **विलंघयितुं** (लांघनेको) **नभः** (आकाश)

तपनः (सूर्य) दीधितिः (किरण) दीपितं (प्रकाशित) एकतः (एक ओर) सततं (निरन्तर) नैशं (रातका) तमोवृतं (अन्धकाराच्छादित) हसितं (हंसना) भिन्नं (छिन्न) तमिस्रचयः (अन्धकारसमूह) पुरः (अग्रे) अनुगतं (पीछे लगा) अविरतं (निरन्तर) उज्झितं (छोड़ा) वारि (जल) विपांडु (विशेषपांडु वर्ण) अचिरद्युतिः (बिजली) उदितः (उग आया) अरत (विरत) निःस्वनः (ध्वनिहीन) पृथुः (मोटा) विलम्बी (लटकता) अम्बुदः (मेघ) विनिद्रं (जगा, फूला) जपाकुसुमं (अड़हुलका फूल) त्विट् (प्रकाश) द्युतिमान् (प्रकाशवान्) निकरः (समूह) महाश्मा (बड़ा पत्थर) विहितं (किया गया) मयूखः (किरण) सांध्यं (सन्ध्याका) निचितः (गठित) सानु (पर्वतपाद) सुरचापः (इन्द्रधनुष) अपपयः (जलरहित) उपविभ्रत् (धारण किये) अम्बुमुक् (मेघ) चयः (समुदाय) विकचं (फूला) वारिरुहं (कमल) स-कलहंसगणः (कलहंसगणके साथ) शुचि (शुद्ध) मानसं (मानसरोवर) अगात्मजा (गिरिजा) कृतेर्ष्याः (ईर्ष्या किये) सकलहः (कलहसहित) सगणः (शिव-गण-सहित) शुचि-मनसः (शुद्धमनवाला) विततं (विस्तृत) शीकरः (फुहार) उपलः (पत्थर) रोधी (रोकनेवाला) विवर्ती (लौटा) अम्बु (जल) समुद्धता (बहती) सितं (सफेद) व्यजनं (पंखा) जाह्नवी (गंगा) सजलजं (सकमल) सततं (निरन्तर) धृतिः (धैर्य) उपकान्तं (पतिके पासवाली) उत्सुकता (उत्कंठा)।

तद्धित (पुनः)—

२०. तुल्य इव—

(७१) वत् (तुल्यमें)—ब्राह्मणवत्, पुष्पवत्, अशोकवत्।

२१. भाववाचक—

(७१क) त्वं—गोत्वं, पुरुषत्वं, स्त्रीत्वम्।

(७२) ता—गोता, पुरुषता, मनुष्यता।

(७३) इमा—द्रढिमा (दृढ़ता), म्रदिमा, शुक्लिमा।

(७४) अण्—मार्दवं, सौहार्दम्।

२२. वाला, हुआके अर्थमें—

(७५) ख (=ईन)—अवारपारीण, पारीणः, सरयूपारीणः, पारावारीणः।

(७६) इतच्—तारकितं नभः, पुष्पितं, कुड्मलितं, कंटकितं, कुसुमितं, पल्लवितं, खण्डितं, पुलकितं, मण्डितं, व्रणितं, सुखितं, रोमांचितं, प्रतिबिम्बितम् ।

२३. प्रमाणमें—

(७७) मात्रच्—उरुमात्रं, पुरुषमात्रं, जानुमात्रम् ।

२४. संख्यासे (वाँ) अर्थमें—

(७८) डट्—एकादशः, द्वादशः, विंशः, त्रिंशः (ट्का लोप)

(७९) मट्—पञ्चमः, नवमः, दशमः, सप्तमः, अष्टमः ।

(८०) थुक्—षष्ठः, कतिथः, कतिपयथः, चतुर्थः ।

(८१) तीय—द्वितीयः, तृतीयः ।

(८२) तमप्—विंशतितमः, एकविंशतितमः, त्रिंशतितमः ।

२५. वालाके अर्थमें—

(८३) मतुप्—गोमान् , धीमान् , श्रीमान् ।

(८४) वतुप् (वान् , वत्)—रसवान् , रूपवान् (अकारान्तसे वतुप्)

(८५) अस्वान्—यशस्वान् ।

त्रयोदशः पाठः

दासीविक्रयपत्र—

संवत् १२८८ वैशाख शुदी १५ गुरावद्य इह (श्रीमदणहिल्लपत्तने समस्तराजावली समलंकृतपरमेश्वरपरमभट्टारक.........श्रीमद्भीमदेवकल्याणविजयराज्ये) दासी विक्रयपत्रमभिलिख्यते, यथा—

राणाश्रीप्रतापसिंहेनानीता गौरवर्णा षोडशवार्षिकी पनुती नाम्नी दासी शिरसि तृणं दत्वा पञ्चमुखनगरविदितं चतुष्पथे रहाप्य विक्रीता । व्यवहारक आसधरेण दासीकर्मकरणाय राणाश्रीप्रतापसिंहस्य ५०४ चतुरधिकपञ्चशतानि द्रम्मान् दत्वा पनुती नाम दासी समस्तनगराधिवासिचातुर्वर्ण्यलोकानां विदितमूल्येन गृहीता ।

अतः परं अनया दास्या व्यवहारकगृहे खण्डन–पेषण–गृहलिंपन–

संमार्जने-न्धनानयन-पानीयोद्वहनादिकं मूत्रपुरीषोत्सर्गादिकं महिषी-गो-अजा-दोहनादिकं दधिविलोडनं तथा क्षेत्रे-खलके तक्रानयनं चारि-आनयनादिकं निन्दन-कर्तनादिकं क्षेत्रकर्म अन्यदपि गृहकर्म सर्वं अकुटिलबुद्ध्या करणीयम्। इत्थं प्रवर्तमानाया दास्या व्यवहारकेन देश-कालानुरूपं विभवानुमानेन भोजनाच्छादनादिकं सर्वं अप्रार्थितं दातव्यम्। तथा अस्या दास्या व्यवहारकगृहे कर्म कुर्वत्याः तस्याः पिता, भ्राता, भर्ता वा धनिकत्वं विधाय कर्मविघातं कारयति, तदा व्यवहारकेण बन्धनताड-नादिघातैर्निर्दयं ताडयित्वा पुनरपि समग्रपत्रलिखितदासीकर्मणि नियो-जनीया। (अथ केशेष्वाकृष्य पादप्रहारैर्यष्टिप्रहारैश्च व्यापाद्यमाना म्रियेत ततः स्वामी निर्दोषः। चातुर्वर्ण्यलोकैः सर्वैरवधारणीयं, यत् सा स्वकर्मव-शाद् दैवहता मृता। स्वामिनः पुत्रपौत्रकलत्रादिपरिवारसहितस्य गंगा-स्नानम्। अथ कूपतडागविषभक्षणादिना म्रियते, ततोपि पञ्चमुखनगर-विदितं अस्तु 'स्वामी निर्दोष एव, एषा कृतपूर्वकर्मविपाकेन दैवहता मृता।' प्रभोः सपरिवारस्य गङ्गास्नानमेव।) अस्योपरिलिखितविधेः पालनाय रक्ष-पालाः तथा नगराधिवासिनः साक्षिणश्च। इहार्थे राणाप्रतापसिंहस्य तथा रक्षपालानां चतुर्णां च यथानाम्नां स्वहस्तेन प्रदत्तमतानि। लिखितमिदं पत्रं उभयाऽभ्यर्थितेन पारथीजयताकेन।

[संवत् १२८८ (सन् १२३१ ई०) वैशाख सुदी १५ बृहस्पतिवार आज यहां (श्रीअनहिलपाटनमें सारी राजावलीसे अलंकृत परमेश्वर परमभट्टारक···श्रीमान् भीमदेवके मङ्गलविजयवाले राज्यमें) दासी विक्रयपत्र लिखा जाता है। यथा—

राणा श्रीप्रतापसिंह द्वारा लाई गई गोरे रंगकी सोलह बरसकी पनुती नामवाली दासी सिरपर तृण दे कर पञ्चप्रमुख नगरको विदित (करा) चौरस्तेपर रख कर बेंची गई। खरीदार आसधरने दासीकर्म करनेके लिये पाँच सौ चार दाम (द्रम्य) देकर पनुती नामक दासी सारे नगरके निवासी चारों वर्णोंके लोगोंको विदित मूल्यसे ली।

इसके बाद इस दासीको, खरीदारके घर कूटना-पीसना, घर लीपना-बुहारना, ईंधन लाना, पानी उबाहना, पेशाब-पाखाना फेंकना आदि, भैंस-गाय-बकरी दूहना आदि, दही बिलोना तथा खेत-खलिहानमें मट्ठा ले जाना, चारा लाना आदि,

धुनना, कातना आदि, खेतका काम, और भी घर का काम सब अकुटिल बुद्धिसे करना (होगा)। ऐसे काम करती दासीके लिये खरीदारको देश-कालके अनुकूल (संपत्तिके) अनुसार भोजन-छाजन आदि सब बिना माँगे देना चाहिये। तथा, इस दासीके खरीदारके घर काम करते समय जो उसका पिता, भाई या पति, धनिक बन काम बिगाड़े, तो खरीदार ताडन-बन्धन आदि प्रहारसे निष्ठुरतापूर्वक पीट कर पत्रमें लिखित सारे काममें उसे लगावे (फिर झोंटा पकड़ पैरके प्रहार, यष्टिके प्रहारसे पीटी जाकर यदि मर जाये, तो चारों वर्णोंके सब लोगोंको समझना चाहिये, कि स्वामी निर्दोष है, और वह दासी अपने कर्म-वश दैवसे मरी। इसके छूतकसे शुद्धिके लिये) पुत्र, पौत्र, भार्या सहित स्वामीको गंगास्नान (भर करना होगा) यदि कूयें-तालाव (में गिरने) विष भक्षण आदिसे मरे, तो भी पंचप्रमुख नगरको विदित हो, कि स्वामी निर्दोष है, यह पहिले किये कर्मके विपाकसे दैवकी मारी मरी। मालिक को सपरिवार गंगास्नान ही (करना होगा)। इस ऊपर लिखे कर्तव्यको पालन करानेके लिये रक्षपाल (पुलिस) नगरवासी साक्षी (हैं)। इस बातमें रानाप्रताप सिंह तथा चारों रक्षपालोंने नामानुसार अपने हाथसे (लिख कर) मत दिया। इस पत्रको दोनों (पक्षों) द्वारा प्रार्थित जयता पारथीने लिखा।

राजावली (राजपदवी) **परमेश्वर** (महाराज) **कल्याण** (कल्याणकारी) **पंचमुखं** (पंच आदि) **रहाप्य** (रहा कर, खड़ी कर) **व्यवहारकः** (खरीदार) **आसधरः** (आशाधर) **द्रम्मः** (दाम नामक सिक्का) **खंडनं** (चावल कूटना) **पेषणं** (पीसना) **चारिः** (घास-चारा) **निन्दनं** (रूई धुनना) **अकुटिलं** (निष्कपट) **प्रवर्तमाना** (काम करती), **विभवानुमानेन** (संपत्तिके अनुसार) **अप्रार्थितं** (बिना माँगे) **कर्मविघातः** (काम बिगाड़ना) **यष्टिः** (लाठी) **व्यापाद्यमाना** (मारी जाती) **अवधारणीयं** (जानना चाहिये) **विधिः** (कर्तव्य) **रक्षपालाः** (चार नगररक्षी) **यथानाम** (नामसहित हस्ताक्षर) **मतं** (दस्तखत) **उभयं** (खरीदार विक्रीदार दोनों) **अभ्यर्थितः** (प्रार्थित, कहा गया)। **तद्धित** (पुनः)—

२६. इव आदिके अर्थमें—

(८६) **कन्** (=इव)—**अश्वकः** (अश्व जैसा)।

कन् (विक्रेय मूर्ति)—शिवकः, विष्णुकः, गणेशकः, (पूजाकी मूर्ति—शिवः ···)।

२७. क्रियाके दोहरानेमें—

(८७) कृत्वसुच् (=कृत्व)—पंचकृत्वः (पाँच बार), सप्तकृत्वः (सात बार)।

(८८) सुच् (=स्)—द्विः, त्रिः, चतुः (चार बार)।

२८. उपादान और समूहके साथ—

(८९) मयट् (=मय) अन्नमयं, पिष्टमयं, अपूपमयं (पूड़ा ही पूड़ा)।

(९०) ठक् (=इक) (समूहे)—मौदकिकं, शाष्कुलिकं (पूड़ीका ढेर)।

" (संबंधे)—वैनयिकः, सामयिकः, सांप्रतिकः, सामाचारिकः, व्यावहारिकः, सामूहिकः, वैशेषिकः।

२९. न हुये का वैसा होना—

(९१) च्वि (=ई)—संघीकरोति (असंघका संघ बनाता है), गणीभवति (अगण गण होता है), अग्नीभवति (अनग्नि अग्नि होता है)।

कर और भव धातुके पहिले अ का ई और इ का ई होता है।

(९२) सात्—अग्निसाद् भवति (अग्नीभवति)।

" (वशमें)—राजसात् करोति, राज्यसात्करोति। (तद्धित समाप्त)।

यात्रोत्सवे बहवोऽश्वकाः हस्तिका वृषभका पण्यार्थं आगताः—मेलामें बहुतेरे घोड़े-हाथी-बैलके खिलौने आये।

किमिति अद्य गृहं मोदकमयं, अपूपमयं, सूपमयं, मांसोदनमयं च पश्यामि ?—क्या है, जो आज घर को लड्डूमय, पूडामय, सूपमय, पुलावमय, देखता हूँ ?

पंचकृत्वोऽहं उपसमुद्रं अव्राजिषं, परं न तत्र तं अपश्यम्—पाँच बार मैं समुद्रके पास गया, लेकिन उसे वहाँ नहीं देखा।

सर्वान् एकीकरोतु भवान् , अहमपि तत्र आगमिष्यामि—सबको आप एक करें, मैं भी वहाँ आऊँगा।

कृपणस्य धनं राज्यसाद्भवति, चौरसाद् अग्निसाद् वा—कंजूसका धन राजाका, चोरका या आगका होता है।

चतुर्दशः पाठः

(शकुन्तलाकी खोई अंगूठी मिली)—

(नागरिकः श्यालः पश्चाद्बद्धपुरुषमादाय रक्षिणौ च)

रक्षिणौ—(तर्जयित्वा) अरे कुम्भीरक, कथय कुत्र त्वया उत्कीर्णनामधेयं अंगुलीयकं समासादितम् ?

पुरुषः—(भीतिनाटितकेन) प्रसीदन्तु भावमिश्राः । अहंने दृशकर्मकारी ।

प्रथमः—किं शोभनो ब्राह्मण इति कलयित्वा प्रतिग्रहो दत्तः ?

श्यालः—सूचक, कथयतु सर्वं अनुक्रमेण । मा एनं अन्तरे प्रतिबन्धय ।

उभौ—यद् आवुत्त आज्ञापयति, कथय ।

पुरुषः—अहं जालोद्गालादिभिः मत्स्यबन्धोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि ।

श्यालः—(विहस्य) विशुद्ध इदानीं आजीवः ।

पुरुषः—एकस्मिन् दिवसे खंडशो रोहितमत्स्यो मया कल्पितो यावत् । तस्य उदराभ्यन्तर इदं रत्नभासुरं अंगुलीयं दृष्ट्वा पश्चाद् अहं तस्य विक्रयाय दर्शयन् गृहीतो भावमिश्रैः । मारयत मुंचत वा । अयं अस्य आगमवृत्तान्तः ।

श्यालः—जानुक, राजकुलं एव गच्छामः ।

रक्षिणौ—गच्छ, अरे ग्रंथिभेदक ।

(सर्वे परिक्रामन्ति) ।

श्यालः—सूचक, इमं गोपुरद्वारेऽप्रमत्तौ प्रतिपालयतं, यावद् इदं अंगुलीयकं यथागमनं भर्तुर्निवेद्य ततः शासनं प्रतीच्य निष्क्रमामि ।

(इति निष्क्रान्तः श्यालः)

द्वितीयो रक्षी—एष नौ स्वामी पत्रहस्तो राजशासनं प्रतीच्य इतो मुखो दृश्यते ।

(प्रविश्य)

श्यालः—सूचक, मुच्यतां एष जालोपजीवी, उपपन्नः खलु अंगुलीयस्य आगमः ।

सूचकः—यथा आवुत्तो भणति ।

(इति पुरुषं परिमुक्तबन्धनं करोति)

पुरुषः—(श्यालं प्रणम्य) भर्तः, अथ कीदृशो मे आजीवः ?

श्यालः—एष भर्त्रा अंगुलीयकमूल्यसंमितः प्रसादोऽपि दापितः (इति पुरुषाय स्वं प्रयच्छति)।

पुरुषः—(सप्रमाणं प्रतिगृह्य) भर्तः, अनुगृहीतोऽस्मि ।

सूचकः—एष नाम अनुग्रहो यत् शूलाद् अवतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः ।

जानुकः—आवुत्त, तेन अंगुलीयकेन भर्तुः संमतेन भवितव्यम् ।

श्यालः—न तस्मिन् महार्हं रत्नं बहुमतमिति तर्कयामि । तस्य दर्शनेन भर्तुरभिमतो जनः स्मारितः ।

(यहाँ शब्दोंके ही अर्थ दिये जाते हैं)—

नागरिकः (नगरका) **श्यालः** (कोतवाल, साला) **रक्षी** (पुलिस, सिपाही) **उत्कीर्णं** (खुदा) **नामधेयं** (नाम) **भीतः** (भय) **नाटितकं** (अभिनय) **समासादितं** (पाया) **प्रसीदन्तु** (कृपा करें) **भावमिश्रः** (साहेब, श्रीमान्) **ईदृशकर्मकारी** (ऐसा काम करनेवाला) **शोभनः** (भला) **कलयित्वा** (समझ कर) **प्रतिग्रहः** (दान) **पृष्टा** (पूछी) **अनुक्रमेण** (क्रमसे) **प्रतिबंधय** (रोक) **आवुत्त** (बाबू) **उद्घालः** (छाब) **आजीवः** (पेशा) **कल्पितः** (काटा) **भासुरं** (प्रकाशमान) **आगमः** (आमदनी, आना) **राजकुलं** (दरबार) **ग्रंथिभेदकः** (पाकटमार) **परिक्रामति** (रंगपर घूमता) **गोपुरं** (सिंह-पौर) **अप्रमत्तः** (सावधान) **प्रतिपालयतं** (दोनों प्रतीक्षा करो) **यथागमनं** (जैसे आई) **निवेद्य** (निवेदन कर) **शासनं** (हुक्म) **निष्क्रमामि** (निकल आता हूँ) **निष्क्रान्तः** (निकल गया) **नौ** (हम दोनों का) **राजशासनं** (राजाज्ञा) **प्रतीक्ष्य** (प्रतीक्षाकर, पाकर) **इतोमुखः** (इधर) **मुच्यतां** (छोड़ा जाये) **जालोपजीवी** (जालसे जीविकावाला) **उपपन्नः** (ठीक है) **परिमुक्तं** (मुक्त) **प्रणम्य** (प्रणाम कर) **मूल्यसंमितः** (दामके बराबर) **प्रसादः** (इनाम) **दापितः** (दिलाया) **स्वं** (द्रव्य, धन) **शूलं** (सूली) **संमतं** (आदरभाजन) **भवितव्यं** (होना चाहिये) **महार्हं** (बहुमूल्य) **बहुमतं** (सम्मानित) **तर्कयामि** (समझता हूँ) **अभिमतः** (प्रिय) **स्मारितः** (याद दिलाया)।

शब्दों का दुहराना—

१. जल्दी करनेमें—**पचति पचति** (जल्दी जल्दी पकाता है)।

२. हरेक—**वृक्षं वृक्षं सिंचति** (एक एक वृक्षको सींचता है)।

३. छोड़ कर—**परि परि अनुराधपुरं वृष्टो देवः** (अनुराधपुर को छोड़ देव वरसा)।

४. समीपता—**उपरि उपरि ग्रामं गतो विमानः** (गाँवके पाससे गया विमान), **अध्यधि सुखं दुःखं** (सुखके पास दुःख), **अधोऽधो वृक्षस्य सर्पः** (वृक्षके नीचे पासमें साँप)।

५. सम्बोधन, निन्दाके साथ—**राजन् राजन् वृथा ते वीर्यं मां अनाथां प्रहरतः** (राजा, मुझ अनाथको पीटनेवाले तेरा पराक्रम व्यर्थ है)।

६. सम्मान—**भगवन् भगवन् अर्हन् असि** (भगवान अर्हत् हो)।

७. निन्दा—**दुष्ट दुष्ट नीचोऽसि** (दुष्ट, तू नीच है)।

दिवानिशं शेते शेते माणवकः (माणवक दिन रात सोता रहता है)

श्रुत्वा श्रुत्वाऽपि तस्य निष्ठुरं वचः कस्य नाम हृदयं न दूयेत (उसका वचन सुन-सुन कर किसका हृदय नहीं दुखी होवे)।

कृपालुर्मुनिः लोकानुकम्पया ग्रामं ग्रामं विहरति—(कृपालु मुनि लोगोंपर दया करनेके लिये गांव-गांव विहरते हैं)।

परि-परि कोलम्बं सर्वत्र व्रीहिक्षेत्राणि (कोलम्बोके पास चारों ओर सर्वत्र धानके खेत)।

उपरि-उपरि लंकां जम्बूद्वीपः (लंकाके ऊपर-ऊपर पासमें भारत है)।

अधोऽधो गिरीणां हरिता वनालिः अतिमनोज्ञा (पहाड़के नीचे-नीचे पास सुंदर हरे वन हैं)।

सखे सखे, किमिदं एव प्रणयप्रमाणं ते (मित्र मित्र, क्या यही है तेरे प्रेमका प्रमाण ?)

भ्रमर भ्रमर, गच्छ मुधा अत्र केतकषंड भ्रमसि (भंवरे-भंवरे जा तू वृथा यहां केवड़ेके वनमें घूमता है)।

पंचदशः पाठः

(परिचयः)

राजारामशास्त्रिणः—इमे खलु महानुभावाः काशीस्थसुप्रसिद्धविदुषां विश्वविख्यातयशसां श्रीशिवकुमार–गंगाधर–दामोदर–सुब्रह्मण्यप्रभृतीनां विदुषां पितामहगुरवः, जगद्विख्यातप्रकांडपांडित्यप्रभावानां श्रीमतां बालसरस्वतीत्युपाधिभाजां बालशास्त्रिणां च गुरव आसन् ।

बालशास्त्रिणः—एते खलु काशीस्थविदुषां समाराध्यपादाः परमपावननामानो महामहोपाध्यायपदवीकाः । एतेषां प्रधानशिष्येषु केषांचित् नामानि—पंडितसम्राजः शिवकुमारशास्त्रिणः, पंडितसार्वभौमा गंगाधरशास्त्रिणः, वैयाकरणशिरोमणयो दामोदरशास्त्रिणः, सुब्रह्मण्यतात्याशास्त्रिणः, जयदेवमिश्राश्च ।

सुधाकरद्विवेदाः—एतेषां परिचयः खलु सूर्यस्य दीपदर्शनमिव । गणितविज्ञाने नैतादृशः कोपि संस्कृतज्ञो विद्वान् इदानींतनेषु अभवत्, यस्य खलु गणितविज्ञानपारदृश्वानः पाश्चात्त्या अपि मुखं अवलोकयेयुः । न केवलं गणिते संस्कृतसाहित्यव्याकरणादिशास्त्रेषु च अप्रतिहतगतय आसन् । संस्कृतकविता अप्येतेषां अद्भुता, हिन्दीभाषायास्तु प्रधानस्तम्भेषु ।

दामोदरलालगोस्वामिमहोदयाः—विविधोपाधिधारिणः परमपूज्यपादाः गंगाधरशास्त्रिमहोदयानां शिष्याः कविचक्रवर्तिश्रीदेवीप्रसादमहोदयानां गुरवश्च इमे खलु काशीस्थविद्वत्सु सर्वमान्यान्यखिलानि शास्त्राणि अध्यापयन्ति ।

('सुप्रभातं' १९८५ विक्रमाब्द, पृष्ठ ६४, ६५)

शब्दके अर्थ—

खलु (बात पर जोर देनेके लिये) **विख्यातयशाः** (प्रसिद्ध यशवाला) **पितामहगुरुः** (दादा गुरु) **प्रकांडं** (विशाल) **उपाधिभाक्** (पदवीधारी) **समाराध्यपादः** (पूज्यपाद) **पावननामा** (पवित्र नामवाला) **पदवीकः**

(पदवीवाला) पंडितसम्राट् (पंडितोंके सम्राट्) पंडितसार्वभौमः (पंडित-चक्रवर्ती) इदानींतनः (इस समयका) पारदृश्वा (पारंगत) अप्रतिहतगतिः (अबाध-गतिवाला) निखिलं (सब)।

कृदन्त—

१. विधान (करणीय) के अर्थमें—

(१) तव्यत् (=तव्य)—एधितव्यं (वर्धनीय), पठितव्यं, भवितव्यम्।

(२) अनीय—एधनीयं, पठनीयम्।

(३) केलिमर् (=एलिम)—पचेलिमा (पकने योग्य), भिदेलिमा (टूटने योग्य)।

(४) यत् (स्वरान्तसे आ का ई)—चेयं (चयनयोग्य) जेयं, देयं, पेयं ज्ञेयम्।

(५) यत् (इ विना)—शय्यं, लभ्यं, शक्यं, सह्यं, गद्यं, पद्यम्।

(६) क्यप् (य) (भावे)—ब्रह्मवद्यं, भव्यं, स्तुत्यं, शिष्यः (शासन-उपदेश-योग्य)। वृत्यं, मृज्यं (मांजने योग्य)।

(७) ण्यत् (=य) (आदिस्वरकी वृद्धि)—कार्यं, हार्यं, धार्यम्।

अस्ति पुरुषता तर्हि एषु वासन्तिकेषु मासेषु पारेसमुद्रं गन्तव्यम्।
पौरुष है, तो इन वसन्तके महीनोंमें समुद्र पार जाओ।

कथं भिदेलिमेन पोतेन मया समुद्रे गन्तव्यं—कैसे टूटे जहाज द्वारा मैं समुद्रमें जाऊँ।

तर्हि काष्ठानि चेयानि, नूतनः पोतः करणीयः—तो काष्ठ जमा करो, नया पोत बनाओ।

लभ्यानि नाविकानि काष्ठानि। अधिमलयं परिपरि त्रिकूटं सर्वा भूमिः काष्ठमयी—नौकायोग्य काष्ठ लभ्य है। मलयप्रदेशमें त्रिकूटके पास चारों ओर सर्वत्र काष्ठमयी भूमि है।

षोडशः पाठः

'रात्रिर्गता मतिमतां वर मुंच शय्यां,
धात्रा द्विधैव ननु धूर्जगतो विभक्ता।
तामेकतस्तव विभर्ति गुरुर्विनिद्रः,
तस्या भवानपरधुर्यपदावलम्बी ॥ ६६ ॥

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा,
पर्युत्सुकत्वमबला निशि खंडितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी,
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः ॥ ६७ ॥

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां,
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभातवायुः,
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुखमारुतस्य ॥ ६८ ॥

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु,
निर्धौतहारगुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्धपरभागतयाधरोष्ठे,
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम् ॥ ७० ॥

यावत् प्रतापनिधिराक्रमते न भानु-
रह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्।
आयोधनाग्रसरतां त्वयि वीर याते।
किं वा रिपूँस्तव गुरुः स्वयमुच्छिनत्ति ॥ ७१ ॥

शय्यां जहत्युभयपक्षविनीतनिद्राः,
स्तम्बेरमा मुखरशृङ्खलकर्षिणस्ते।
येषां विभाति तरुणारुणरागयोगाद्,
भिन्नाद्रिगैरिकतटा इव दन्तकोशः ॥ ७२ ॥

भवति विरलभक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः,
स्वकिरणपरिवेषोद्भेदशून्याः प्रदीपाः ।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्तां,
अनुवदति शुकस्ते मंजुवाक्पंजरस्थः ॥ ७३ ॥

इति विरचितवाग्भिर्वन्दिपुत्रैः कुमारः,
सपदि विगतनिद्रस्तल्पमुज्झांचकार ।
मदपटुनिनदद्भिर्बोधितो राजहंसैः,
सुरगज इव गांगं सैकतं सुप्रतीकः ॥ ७४ ॥

अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं,
दिवसमुखोचितमंचिताक्षिपद्मा ।
कुशलविरचितानुकूलवेषः
क्षितिपसमाजमगात् स्वयंवरस्थम् ॥ ७५ ॥

—रघुवंश (कालिदास), सर्ग ५

(अज विदर्भराजपुत्री इन्दुमतीके स्वयंवरमें गये । वहाँ प्रातःकाल वन्दी-जन उन्हें उठा रहे हैं) ।

हे मतिमानोंमें श्रेष्ठ, रात गई, शय्या छोड़ो, संसारके धुरेको विधाताने दो तरह ही बाँटा है । उसे एक ओर तुम्हारे जागृत पिता उठाये हैं, और दूसरे धुरा-धारक आप हैं ॥ ६६ ॥

निद्रावश आपके द्वारा न देखी जाती लक्ष्मी रातमें समागमवंचित अबलाकी तरह जिस दिगन्तमें झुके चन्द्रमासे मनबहलाव करती थी, वह भी तेरे मुखकी शोभाको छोड़ रहा (मलिन) है ॥ ६७ ॥

प्रभात-वायु पर-गुणसे स्वाभाविकको तेरे श्वासकी सुगन्धका इच्छुक सा अरुण-किरणोंसे खुले कमलोंके साथ संसर्गित होता, अनोकहोंके मुर्झाये फूलोंको हरता है ।

भीतरसे लाल तरुपल्लवोंमें, धुले मोती समान स्वच्छ ओस-कणसे चमकता है, जैसे, दाँतोंकी किरणके साथ उत्कर्ष प्राप्तिसे युक्त नीचेके ओठमें तेरी लीलावाली मुसकान ॥ ७० ॥

जब तक प्रतापका निधि सूर्य उगता है, तब तक (सारथी) अरुण जल्दी

अन्धकारका नाश कर देता है, (इसी तरह) हे वीर, तेरे युद्धमें अग्रगामिता प्राप्त कर लेने पर तेरे पिता रिपुओंको क्यों स्वयं उच्छेद करेंगे ? ॥ ७१ ॥

मुखरशृङ्खलाओंको खींचते दोनों पार्श्वोंसे निद्रा हटाये वे तेरे हाथी शय्या छोड़ रहे हैं, जिनके दन्तकुड्मल नवीन अरुणके रंगके संयोगसे पहाड़ी गेरुवाले तट जैसे मालूम होते हैं ॥ ७२ ॥

मुर्झाये फूलोंकी पूजा शिथिल रचनावाली हो गई है, अपने किरण-मण्डलके स्फुरणसे सूने हो रहे हैं दीपक, पिंजरेमें स्थित यह मधुरभाषी तेरा तोता भी हमारी जागरण सम्बन्धी वाणीको दुहरा रहा है ॥ ७४ ॥

इस प्रकार रचित वचनोंवाले वन्दिपुत्रों द्वारा प्रबोधित हो कुमारने निद्रासे रहित हो तुरन्त शय्याको छोड़ दिया। जैसे मदसहित अच्छा नाद करते राजहंसों द्वारा जगाया देवगज सुप्रतीक गंगाके बालूको (छोड़े)। तब सुन्दर पलकोंवाले (अज) प्रभातके उपयुक्त शास्त्र-सम्मत क्रियाको समाप्त कर, अच्छा अनुकूल वेष धारे स्वयंवरस्थित राजसमाजमें गया ॥ ७६ ॥

कृदन्त (पुनः)—

२. कर्तामें निम्न प्रत्यय आते हैं—

(१) तृच्—कर्त्ता (करनेवाला)—कुटिता, नष्टा, जिगमिषिता, पिपठिषिता (पढ़नेका इच्छुक)।

(२) ण्वुल् (=अक)—कारकः, कोटकः, (आकारान्तसे युक्), दायकः, दरिद्रायकः, ध्यायकः।

" शमकः, तक्षकः, बधकः, जनकः, लम्भकः (लाभी)।

" (यङन्तसे)—पापचकः, पापठकः (बहुत पढ़नेवाला)।

(३) ल्युट् (=अन)—नन्दनः, सूदनः (मारनेवाला)।

(४) णिनि (=इन्)—ग्राही, स्थायी, मंत्री।

(५) अच् (=अ)—पचः (पकानेवाला)।

(यङ्में)—लोलुवः (बहुत काटनेवाला), पापठः, वावदः (बहुत बोलनेवाला)।

(६) क (=अ)—क्षिपः (फेंकनेवाला), लिखः, बुधः, ज्ञः, प्रदः, प्रज्ञः, किरः (बिखेरनेवाला)।

(७) ण्वुन् (=अक)—नर्तकः, खनकः ।
(८) अण् (=अ) (कर्म लगा होने पर)—कुम्भकारः, रथकारः, तन्तुवायः ।
(९) ट (=अ) (अधिकरण लगा)—मद्रचरः, दिनचरः, निशाचरः, काशीचरः ।
(१०) ट (=अ) (कर्म लगा)—भिक्षाचरः, सेनाचरः, पुरस्सरः, अग्रेसरः ।

पिपठिषितो भवान् तर्हि कथं न जिगमिषति वाराणसीम् ?—पढ़नेके इच्छुक आप क्यों नहीं वाराणसी जाना चाहते ?

बधकः स जाल्मो यो बहुजनहितविरोधी—वह दुष्ट हत्यारा है, जो बहुजनके हितका विरोधी है ।

सूदनः जनानां यो दारिद्र्यं प्रसारयति लोके—जो लोकमें दरिद्रताका प्रसार करता है, वह जनघाती है ।

सप्तदशः पाठः

सत्स्वप्यनेकेषु प्रमादेषु पूर्वतनानां ब्राह्मणानां गुणभारः शिरसाऽऽवद्यत एवानागतार्यसन्ततिभिः । अतीतं सर्वतोमुखेनातिधवलं, अनागते किं स्थानं तैरादेयमिति मीमांस्यम् । चिरन्तनसंस्कृतिप्रवाहरक्षणमेव संस्कृतविद्वत्समाजस्य इतिकर्तव्यता । तुल्यकालपाश्चात्त्यपुरोहितसमुदायतुलनायां अत्रत्यः पंडितवृन्दः उदाराशयः एवातिष्ठत्तराम् । नात्र भूगोल-भूभ्रमण–मन्त्रद्रष्टारो गेलेलियोवद् अविद्याहुताशशलभीभूताः । अद्यावधि अस्माकं संस्कृतिरुन्मुक्तप्रवाहा तेषां प्रयासेन अतिष्ठदिति नास्ति तिरोहितं मन्त्र-ब्राह्मणो-पनिषदि-तिहास-पुराण–क्रमाभिज्ञानाम् । तथाप्यद्य चिरघनतमिस्रपटलाच्छन्ननिशावसाने स्वच्छन्दतोपरागारुणकिरणशोभिनीं प्राचीं निरीक्ष्य कापि स्तब्धेव उन्मनस्केव प्रतिभाति पण्डितपरिषद् । न चैतदस्ति तस्याः पूर्वगौरवानुरूपम् । गणतन्त्रयुगः किलायम् । आत्मावसादो यत्राक्षम्यो महापातकान्यतमः, सहैव परावमानोऽपि गरीयानघः । पण्डितैः समदर्शित्वं आचारे प्रदर्शनीयं न तु वाचि । लोक-

रूढिः स्वयमेव दैनंदिनं शैथिल्यमापद्यमाना दृश्यते। कालो हि बलीयान्। शैले शिरोघट्टनमेव भवितव्यानां सार्वजनीनानां मार्गावरोधप्रयत्नः। स्वातन्त्र्यसुप्रभातेऽस्मिन् किमपि तथा न विधेयं, येन चिरप्रशस्तं स्वकीर्तिललाटं शाश्वतकलंककालिमाकलुषितं जायेत।

—'सुप्रभातं' (रा. सांकृत्यायन) सं० १९८५ (सन् १९२८) पृ. १२७

[अनेक भूलोंके होते भी आनेवाली आर्यसन्तान पुराने ब्राह्मणोंके गुणके भारको सिरपर धारण करेगी ही। भूतकालके सब तरहसे अतिउज्ज्वल होते भी भविष्यमें उन्हें क्या स्थान लेना है, इसपर विचार करना है। चिरकालीन संस्कृतिके प्रवाहकी रक्षा करना ही संस्कृतके पण्डितसमाजका कर्तव्य है। समकालीन पश्चिमी पादरियोंकी तुलना करनेपर, यहांवाले पण्डित लोग अति उदार हृदय थे। यहां भूमिके गोल होने, पृथिवीके भ्रमण करनेके सिद्धान्तके आविष्कारक गेलेलियोकी तरह अज्ञानकी आगके पतङ्ग नहीं हुये। इन्हींके प्रयाससे आजतक हमारी संस्कृति मुक्तप्रवाह रही—यह वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् , इतिहास, पुराणके क्रमके जाननेवालोंसे छिपा नहीं। तो भी इस समय चिरकालसे घने अन्धकारके ठट्टसे आच्छन्न रातके अवसानमें स्वतन्त्रताकी उषाके अरुण किरणसे शोभायमान प्राचीको देख पण्डित-समाज कुछ जडीभूत-सा वेमन-सा दीखता है, और यह उसके पूर्व गौरवके अनुरूप नहीं है। यह गणतन्त्रका युग है, जहां अपनेको नीचे गिराना अक्षम्य अपराध है, साथ ही परकीय अवमानना भी भारी पाप है। पण्डितोंको समदर्शित्व आचरणमें दिखाना चाहिये, न कि वचनमें। लोक-रूढियां स्वयं ही दिनोंदिन शिथिल होती दीख रही हैं। काल सबसे जबर्दस्त है। समस्त जनतामें व्याप्त होनहारियोंके रास्तेके रोकनेका प्रयत्न पहाड़से सिर टकराना जैसा है। स्वतन्त्रताके इस प्रभातमें कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिये, जिससे सदासे प्रशस्त अपनी कीर्तिका ललाट सदाके लिये कलंककी कालिमासे मलिन हो जाये।]

कृदन्त (पुनः)—

३. उस स्वभाव आदिके लिये—

(११) णिनि (=इन्) (तत्स्वभावमें)—उष्णभोजी, शीतभोजी, ब्रह्मवादी।

णिनि (उपमानमें कर्तामें)—ध्वांक्षरावी (कौवेसा चिल्लानेवाला), उष्ट्रक्रोशी।
,, (व्रतमें)—स्थण्डिलशायी, जलशायी।
,, (बराबर वैसे)—क्षीरपायिनः उशीनराः, नारिकेलिभोजिनः सैंहलाः।
,, (झूठे अभिमानमें)—रूपमानी, पंडितमानी।
(१२) खश् (=य) (मन्यसे)—पंडितम्मन्यः, वीरम्मन्यः।

४. भूतके लिये, भाव और कर्ममें—

(१३) क्त (=त) (भावमें नपुंसक भी)—कृतः, स्तुतः, स्मृतः, स्नातः, भूतं (भावमें)।
,, (र और दके बाद त का न)—शीर्णः, खिन्नः, भिन्नः।
,, —निद्राणः, ग्लानः (रोगी)।
,, —लूनः, दूनः।
(१४) क्तवतु (=तवान्)—कृतवान्, स्तुतवान्, स्मृतवान् (याद किया)।
(१५) क—शुष्कः (सूखा)।
(१६) व—पक्वम् (पका)।

स्थण्डिलशायिनो ब्रह्मचारिणः—कड़ी धरतीपर सोनेवाले ब्रह्मचारी।
ध्वांक्षरावी वृद्धो गायकमानी—कौवे सा चिल्लानेवाला गायक होनेका अभिमानी।
लूनं तृणं पुनः प्ररोहति, न तु दीर्णं हृदयम्—कटा तृण फिर उगता है, पर टूटा हृदय नहीं।
पण्डितम्मन्यता पाण्डित्ये महती बाधा—पण्डित होनेका झूठा अभिमान पांडित्यमें भारी बाधा।
ग्लानाय भेषजं हरति बुभुक्षिताय अन्नं—रोगीके लिये दवा ले जाता है, भूखेके लिये अन्न।

—•—

अष्टादशः पाठः

(उन्नीसवीं सदीके पूर्वार्धके कुमाऊँके कवि गुमानीने दुर्जनका गुणगान इस प्रकार किया है)।

अयि सुजनेतर, वक्तुं किमपि भवन्तं वचोऽधुना तथ्यम्।
मानसमुत्सहते मे विजित्य कोपं तदाकलय ॥ १ ॥
हर्तुं वयो जनन्या कर्तुमवन्याः सुदुर्धरं भारम् ।
क्लेशयितुमार्यलोकान् दुर्जन, ते केवलं जन्म ॥ २ ॥
यद् गर्भ एव तप्त्वा न मृतो जातोऽपि नाहिना दष्टः ।
जीवसि सुखं दुरात्मन्, दौर्भाग्यं तत् सतामेव ॥ ४ ॥
परुषैर्वचोभिरुग्रैः पुरुषान् महतस्तुदन् अधिक्षिपसि ।
ननु वद विश्वजनीनैः किन्तव कितवापराद्धं तैः ॥ ५ ॥
वन्द्यान् गुणैरनिंद्यान् महानुभावान् मुहुर्मुहुस् तुदतः ।
दुर्मुख, तव कथमेका शतधा न विदीर्यते जिह्वा ॥ १३ ॥
आपातत: समक्षं मधुराकारोऽन्तरालतः क्रूरः ।
बुध्यन् ननु हतबुद्धे, त्वमसिरसि क्षौद्रदिग्ध इव ॥ २६ ॥
कर्तुं प्रहर्षवर्षं सताममर्षं प्रकर्षमितरेषाम् ।
निरमात् कविर्गुमानी भुवि दुर्जनदूषणं नाम ॥ ४२ ॥

[हे अ-सुजन, तुमसे अब कुछ तथ्य वचन कहनेके लिये कोप जीता मेरा मन उत्साह करता है, उसे सुनो ॥ १ ॥

दुर्जन, तुम्हारा जन्म केवल माताकी जवानी हरने, पृथिवीको दुर्धर भार वाली बनाने, अच्छे लोगोंको क्लेश देनेके लिये हुआ ॥ २ ॥

दुरात्मा, जो तुम गर्भमें ही तप्त हो न मरे, जनमने पर सांपसे नहीं डँसे गये, जो तुम सुखसे जीते हो, सो सज्जनोंका दुर्भाग्य है ॥ ४ ॥

तेज कठोर वचनोंसे महापुरुषोंको वेधते तुम निन्दते हो। हे फरेबी, बताओ तो उन सर्वप्रसिद्ध (सज्जनों) ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा ? ॥ ५ ॥

अनिन्द्य गुणोंवाले वन्दनीय महानुभावोंको बार-बार बेधते, दुर्मुख, तुम्हारी एक जीभ सौ हो क्यों नहीं फटती ? ॥ १३ ॥

सरसरी तौरसे सामने मधुराकार (पर) भीतरसे क्रूर, बुद्धि-मारे, यह जानते भी तुम मधुलिप्त तलवार जैसे हो ॥ २९ ॥

सज्जनोंको हर्षकी वर्षा करनेको, दूसरोंको अधिक अमर्ष करनेको, कवि गुमानी ने पृथिवीपर 'दुर्जन-दूषण' नामक रचना की ॥

—'दुर्जनदूषण' (गुमानी)।

अधुना (अब) **तथ्यं** (सच्ची) **आकलय** (सुन) **अवनिः** (धरती) **सुदुर्धरं** (धारण करनेमें अतिकठिन) **अहिः** (साँप) **उग्रः** (तीक्ष्ण) **तुदन्** (बेधते) **अधिक्षिपसि** (निन्दता है तू) **कितव** (धूर्त) **अपराद्धं** (अपराध किया) **आपाततः** (सरसरी तौरसे) **क्षौद्रं** (मधु) **दिग्धं** (लिप्त) **अमर्षः** (क्रोध) **निरमात्** (बनाया)।

कृदन्त (पुनः)—

५. लिट् (भूत) के लिये—

(१७) क्वसु (=वान्) **सेदिवान्**, (बैठा), **जग्मिवान्** (गया), **ददिवान्** (दिया), **शुश्रुवान्** (सुना), **विविद्वान्** (जाना)।

६. अन्य कालवाची—

(१८) शतृ (=अन्त्) (लट्, वर्तमान)—**पचन्**, **पठन्**, **वदन्**, **गच्छन्** (जाते)।

(१९) वसु (=अन्त्)—**विद्वान्**, **विद्वांसः**।

(२०) शतृ (लृट्, भविष्य)—**पठिष्यन्**, **वदिष्यन्**, **गमिष्यन्**, **यास्यन्** (भविष्यमें जाते)।

(२१) शानच् (=आन) (लट्, वर्तमान्)—**पचमानः**, **पठमानः**, **वदमानः**, **शयानः** (सो रहा)।

(२२) शानच्, लृट् (भविष्य) के साथ—**करिष्यमाणः**, **पठिष्यमाणः**, **वदिष्यमाणः**।

जग्मिवान् स हस्तिनापुरं—वह हस्तिनापुर गया।

पठमान एव स अश्वशकटिकया निर्ययौ—पढ़ते हुये वह घोड़ा गाड़ीसे निकला।

शुश्रुवान् अर्जुनः तत्र अग्रजस्य वचः—वहाँ अर्जुनने जेठे भाईका वचन सुना था।

एकोनविंशः पाठः

समारप्स्यमान एव विनोदे स्फटिकस्य कनीयान् भ्राता म्रक्षणो वाचंयमः परिभ्रमन् पश्यतामेव तेषां सर्वेषां तस्मिन् काष्ठे निषसाद। अथ माणवका मुहूर्तं किंकर्तव्यविमूढा बभूवुः। अनन्तरं एकतमः तेषां कातरभावेन तं नुनोद, व्युत्थातुं व्यादिदेश। किन्तु, म्रक्षणः एकान्तं मुक्तसंगोऽवतस्थे। स हि क्रीडानां वैयर्थ्यं तर्कयन् बालतार्किक इव ललक्षे। तदालोक्य स्फटिको भृशं चुक्रोध, चुक्रोश च—'म्रक्षण, एष निक्षिपामि ते, सद्यश्चेत् न उत्तिष्ठसि।'

म्रक्षणस्तु केवलं भूयोपि सुखावस्थितये किंचित् ससर्प।

सम्प्रति स्फटिकेन गणाभिमुखं यदि स्वकीयो नायकोचितः प्रभावः स्थापनीयोऽभविष्यत् तर्हि स स्विकां तर्जनां कार्ये पर्यणमयिष्यद्, इति विशदमासीत्। किन्तु प्राप्ते विषमावसरे तस्योत्साहो भंगमापेदे। तथापि प्रतिभाशालिनि तस्य मनसि सहसा काचिद् अभिनवा युक्तिरुन्मिमेष, या तस्य कनीयांसं पराभवितुं अनुचरांश्च रंजयितुं अलंभविष्णुरासीत्। अथ म्रक्षणसमेतमेव दारुखण्डं परिवर्तयितुं शशास। म्रक्षणः शासन शुश्राव। तत्र उपश्लेषणमेव चात्मगौरवं मेने। किन्तु विषयान्तरेषु लौकिकीं कीर्तिमभीप्सुभिस्तुल्यं स तत उद्भविष्यन्तीं आपत्तिं उपेक्षाञ्चक्रे।

अथ माणवकाः तं काष्ठखण्डं अपसारयितुं विचक्रमुः, पूर्णबलं आदधुः, चुक्रुशुश्च— 'एकं, द्वे, त्रीणि, याहि।' याहि शब्दोच्चारणसम-

कालमेव काष्ठखण्डो ययौ, सममेव च मक्षणस्य तर्को गरिमा, सर्वस्वं च ययुः । —'गृहागमनं' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर), 'सुप्रभात' १९८५,९३ ।

[खेल आरंभ होनेवाला था, तभी फटिकका छोटा भाई मक्खन चुपचाप टहलता उन सबके देखते ही उस काष्ठपर बैठ गया । तब लड़के क्षणभर किंकर्तव्य-विमूढ हो गये । फिर उनमेंसे एकने कातरभावसे प्रेरित किया, उठनेका आदेश दिया । किन्तु मक्खन अकेले असंग बैठा रहा । उसने बाल तर्कशास्त्रीकी तरह खेलोंकी व्यर्थताको लखा । सो देख फटिक अधिक क्रुद्ध हुआ, और चिल्लाया— 'मक्खन, यदि तुरन्त नहीं उठा, तो यह फेंकता हूँ ।' मक्खन और भी अच्छी तरह बैठनेके लिए थोड़ा सरका ।

अब फटिकको गणके सामने अगर नेताके उपयुक्त अपना प्रभाव कायम रखना है, तो उसे अपनी घुड़कीको कार्य-रूपमें परिणत करना होगा, यह साफ था । लेकिन, कठिन परिस्थिति आ पड़ने पर उसका उत्साह टूट गया । तो भी उसके प्रतिभाशाली मस्तिष्कमें कोई नई युक्ति उद्भूत हो गई, जो उसके अनुजको पराजित करने और अनुयायियोंको अनुरञ्जित करनेमें समर्थ होनेवाली थी । तब मक्खन सहित काठको उलटनेका हुक्म सुनाया । वहाँ बैठनेको ही उसने आत्म-गौरव समझा । लेकिन दूसरी बातोंमें लौकिक यश चाहनेवालोंकी तरह होनेवाली आफतकी उसने उपेक्षा की ।

तब लड़कोंने उस काठके टुकड़ेको हटाना आरंभ किया, पूरा बल लगाया, और चिल्ला उठे—'एक, दो, तीन, जा ।' जा शब्दके मुंहसे निकलते ही काठका टुकड़ा चल पड़ा, उसके साथ ही मक्खनका तर्क, गौरव और सर्वस्व भी चला गया ।]

समारप्स्यमानः (समारब्ध होनेवाला) **वाचंयमः** (जीभ रोके) **निषसाद** (बैठा, लिट्) **बभूवुः** (हुए, लिट्) **नुनोद** (प्रेरित किया, लिट्) **ललक्षे** (लखा, लिट्) **भृशं** (और और भी) **चुक्रोध** (क्रोधित हुआ, लिट्) **सद्यः** (तुरन्त) **सम्प्रति** (अब) **तर्जना** (धमकी) **स्विका** (अपनी) **पर्यणम-यिष्यद्** (यदि परिणत करे, लृट्) **आपेदे** (हुआ, लिट्) **अलंभविष्णुः** (सकनेवाला) **उपश्लेषण** (लगे रहना) **मेने** (माना, लृट्) **अभीप्सुः** (इच्छुक) **उद्भविष्यन्ती** (उद्भूत होनेवाली) **चक्रे** (किया, लिट्) **विचक्रमुः** (कोशिश की, लिट्) ।

कृदन्त (पुनः)—

७. वैसा स्वभाव, गुण कर्मवाला—

(२३) तृन् (=तृ)—कर्ता कटान् (चटाइयोंका बनानेवाला), भोक्ता अपूपान्, वक्ता ।

(२४) इष्णुच् (=इष्णु)—अलंकरिष्णुः (अलंकृत करनेवाला), निराकरिष्णुः, उत्पतिष्णुः (उड़नेवाला), रोचिष्णुः (प्रकाशनेवाला), वर्तिष्णुः, वर्धिष्णुः, सहिष्णुः, चरिष्णुः, विष्णुः (व्यापनशील), प्रजनिष्णुः (प्रजनन करनेवाला) ।

(२४ क) ग्स्नु (=स्नु)—ग्लास्नुः (निरानन्दी), स्थास्नुः, जिष्णुः ।

(२५) घिनुण् (=इन्)—श्रमी, परिश्रमी, प्रमादी, अनुरोधी, आयासी, परिदेवी (रोनेवाला), दोषी, द्वेषी, द्रोही, योगी, विवेकी, त्यागी, रागी, भागी, विलासी ।

(२६) वुञ् (=अक)—निन्दकः, हिंसकः, विनाशकः, आक्रोशकः (हल्ला करनेवाला) ।

(२७) उकञ् (=उक)—पातुकः (गिरनेवाला), भावुकः, घातुकः (पकड़नेवाला) ।

(२८) षाकन् (=आक)—जल्पाकः (बुलक्कड), भिक्षाकः, लुंठाकः (लुटेरा), वराकः ।

(२९) इनि (=इन्)—जयी, विजयी, क्षयी, प्रसवी ।

(३०) आलुच् (=आलु)—दयालुः, तन्द्रालुः, निद्रालुः, शयालुः, पतयालुः, स्पृहयालुः ।

(३१) कुरच् (=उर)—भिदुरः, छिदुरः, विदुरः (जाननेवाला) ।

(३२) घुरच् (=उर)—भंगुरः, भासुरः (प्रकाशवाला) ।

(३३) क्वरच् (=वर)—नश्वरः, जित्वरः, सृत्वरः (गमनशील) ।

(३४) उ—चिकीर्षुः (करनेका इच्छुक), आशंसुः(आशा करनेवाला), भिक्षुः ।

निराकरिष्णुर्जनसम्मतं मतं—जनसम्मानित मतका निराकरण करनेवाला ।

ग्लास्नुः सदा स्याद् भुवि भारभूतः—मुहर्रमी सदा भूमिका भारभूत (है) ।

श्रमी क्लमी किन्तु विलासिजीवितं परस्य यः श्रान्तिविधावुपेक्षकः— श्रमिक परेशान होनेवाला, किन्तु परिश्रमके कामके उपेक्षक द्वेषका जीवन विलासमय।

पतयालूनि पत्राणि शरदि हेमन्ते वा—शरद या हेमन्तमें पत्र गिरनेवाले।

विंशः पाठः

(बुद्धके वचन कैसे)—

सुपदानि महार्थानि तथ्यानि मधुराणि च।
गूढोत्तानोभयार्थानि समास-व्यासवन्ति च॥ ६७॥
कस्य न स्यादुपश्रुत्य वाक्यान्येवंविधानि ते।
त्वयि प्रतिहतस्यापि सर्वज्ञ इति निश्चयः॥ ६८॥
प्रायेण मधुरं सर्वं अगत्या किंचिदन्यथा।
वाक्यं तवार्थसिद्ध्या तु सर्वमेव सुभाषितम्॥ ६९॥
यच्छ्लक्ष्णं यच्च परुषं यद् वा तदुभयान्वितम्।
सर्वमेवैकरसतां विचार्यं याति ते वचः॥ ७०॥
अहो सुपरिशुद्धानां कर्मणां नैपुणं परम्।
यैरिदं वाक्यरत्नानामीदृशं भाजनं कृतम्॥ ७१॥
अस्माद्धि नेत्रसुभगादिदं श्रुतिमनोहरम्।
मुखात् क्षरति ते वाक्यं चन्द्राद् द्रवमिवामृतम्॥ ७२॥
रागरेणुं प्रशमयद् वाक्यं ते जलदायते।
वैनतेयायते द्वेषभुजंगोद्धरणं प्रति॥ ७३॥
दिवाकरायते भूयोऽप्यज्ञानतिमिरं नुदत्।
शक्रायुधायते मानगिरीन् अभिविदारयत्॥ ७४॥
दृष्टार्थत्वाद् अवितथं निःक्लेशत्वाद् अनाकुलम्।
गमकं सुप्रयुक्तत्वात् त्रिकल्याणं हि ते वचः॥ ७५॥

विदुषां प्रीतिजननं मध्यानां बुद्धिवर्धनम् ।
तिमिरघ्नं च मन्दानां सार्वजन्यमिदं वचः ॥ ७८ ॥
यन्नादेशे न चाकाले नैवापात्रे प्रवर्तसे ।
वीर्यं सम्यगिवारब्धं तेनामोघं वचस्तव ॥ ८१ ॥

—अध्यर्धशतक (मातृचेट) ।

सुपदं (सुन्दर पदवाला) तथ्यं (सत्य) उत्तानं (स्पष्ट) उभयार्थं (दोनों अर्थवाला) समासः (संक्षेप) व्यासः (विस्तार) उपश्रुत्य (सुनकर) प्रतिहतः (प्रयुक्त) अगत्या (लाचार) श्लक्ष्णं (कोमल) परुषं (कठोर) नैपुणं (निपुणता) नेत्रसुभगं (देखनेमें सुन्दर) श्रुतिमनोहरं (सुननेमें मनोहर) क्षरति (निकलता) द्रवं (तरल) प्रशमयद् (शमन करनेवाला) जलदायते (मेघाता है) वैनतेयायते (गरुडाता है) द्वेषभुजंगः (द्वेषरूपी सर्प) उद्धरणं (उखाड़ना) नुदत् (हटाता) शक्रायुधायते (वज्र जैसा करता है) मानगिरिः (अभिमान-पहाड़) अभिविदारयत् (विदारण करता) दृष्टार्थः (प्रत्यक्ष वस्तु) अवितथं (न झूठा) अनाकुलं (न अस्तव्यस्त) गमकं (बोधक) सुप्रयुक्तं (अच्छी तरह प्रयुक्त) त्रिकल्याणं (आदि, मध्य और अन्तमें मंगलस्वरूप) अदेशं (देशके प्रतिकूल) अकालं (कालके अननुकूल) अपात्रं (पात्रके अयोग्य) वीर्यं (पराक्रम) ।

कृदन्त (पुनः)—

८. क्रियाके लिये क्रियामें—

(३५) तुमुन् (=तुम्)—कर्तुं, द्रष्टुं, गन्तुं, भोक्तुं गच्छति, शक्नोति, हन्तुं क्रमते ।

(भोक्तुं यह काल समय या वेलाके लिये भी आता है ।)

(३६) ण्वुल् (=अक)—दर्शकं, द्रष्टुं वा ।

९. धातुके अर्थमें—

(३७) श्तिप् (=इ)—पठिः (पढ़ना), पचिः, वदिः ।

(३८) श्तिप् (ति)—पठतिः, पचतिः, वदतिः ।

(३९) क्त (=त)—हसितं (हंसना), पठितं ।

(४०) ल्युट् (=अन)—हसनं, पठनं, कथनम् ।

१०. एक क्रिया करके—

(४१) क्त्वा (=त्वा)—भुक्त्वा (खाकर), गत्वा (जाकर), अलं (बस), अलं पीत्वा (पीनेसे बस), पीत्वा खलु।

नञ् समासमें भी—अकृत्वा, अपठित्वा, अदत्वा।

(४२) ल्यप् (=य) (यदि उपसर्ग आया हो क्त्वा की जगह तो) उपभुज्य, प्रदाय, विज्ञाय, अभिगम्य, विधाय, प्रपठ्य।

११. वर्णोंसे—

(४३) कार—अकारः, रकारः।

भोक्तुं एव जानाति न कर्तुं—खाना ही जानता है नहीं करना।

तस्य जल्पितं मधुरं, हसितं मनोहरं—उसका बोलना मधुर हंसना मनोहर।

कृतघ्नाय अलं दत्वा—कृतघ्नको देना वेकार।

अकृत्वा स कथं भोक्तुं अलं—बिना (काम) किये कैसे वह भोगका भागी।
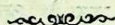
एकविंशः पाठः

(पुष्पक विमानसे अयोध्या लौटते राम)—

वैदेहि पश्यामलयाद् विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्॥ २॥
गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद् विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन॥ ४॥
मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः॥ ६॥
ससत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥ १०॥
मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नं द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोतसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्॥ ११॥

वेलानिलाय प्रसृता भुजंगा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः ।
सूर्यांशुसंपर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः ॥१२॥
प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन ।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥१४॥
दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलंकरेखा ॥१५॥

—रघुवंश (कालिदास)

[जानकी, मलय (पर्वत) तक मेरे सेतु द्वारा विभक्त फेनिल समुद्रको देख, जैसे आकाशगंगा द्वारा शरत्कालीन सुन्दर तारोंको प्रकट करता स्वच्छ आकाश ॥२॥

सूर्यकी किरणें इस (समुद्र) से गर्भ धारण करती हैं, यहाँ धन बढ़ते हैं। जल रूपी ईंधनवाली आगको यह धारता है, आह्लादक ज्योति (=चन्द्र) इससे जनमा ॥ ४ ॥

तरंगरूपी अधरके दानमें दक्ष अनन्यसाधारण पत्नीप्रेमी यह (समुद्र) स्वयं पीता और मुखदानमें स्वभावतः ढीठ नदियोंको पिलाता है ॥ ९ ॥

ये तिमि (ह्वेल) प्राणियों सहित नदी मुखके जलको खुले मुँह होनेसे (अपने) छेदवाले सिरों द्वारा टकराते जलके प्रवाहोंको उछालते हैं ॥ १० ॥

उछलते हाथी जैसे नक्रों द्वारा दो प्रकारसे वटे समुद्रके फेनोंको देख। गालके पास होनेसे जो क्षण भरके लिये इनके कानके चामर बन जाते हैं ॥ ११ ॥

तटके वायुको (पीनेके) लिये फैले सर्प बड़ी लहरोंकी उठानसे अभिन्न (से हो), सूर्य किरणोंके संपर्कसे बढ़े रंगवाले फणस्थ मणियों द्वारा व्यक्त होते हैं ॥ १२ ॥

पानी पीनेमें प्रवृत्त मात्र, भँवरके वेगसे घूमते बादल द्वारा अधिक मथा जाता यह समुद्र जैसे पुनः (देवासुरोंके कालकी तरह) पहाड़ द्वारा (मथा जा रहा) है ॥ १४ ॥

लोहके चक्के जैसे लवणसागरके दूर ताल-तमालकी वनपंक्तिसे नीली पतली वेला धारासे बंधी कलंककी रेखा सी दीखती है ॥ १५ ॥]

अम्बुराशिः (समुद्र) **छायापथः** (आकाशगंगा) **चारुतारं** (सुंदर तारों वाला) **अर्कः** (सूर्य) **मरीचिः** (किरण) **अश्नुते** (पाता है) **वसु** (धन) **अबिन्धनं** (पानी है जिसका ईंधन, बडवा अग्नि) **प्रह्लादनं** (आनन्ददायक)

अजनि (पैदा किया) मुखार्पणं (चुम्बन) प्रगल्भः (ढीठ) अधरदानं (चुम्बन) दक्षः (चतुर) कलत्र (पत्नी) सिन्धुः (नदी) स-सत्त्वः (प्राणि-सहित) विवृतं (खुला) तिमयः (विशाल मछलियाँ) मातंगः (गज) क्षणचामरः (क्षण भरके लिये चमर) वेला (तट) स्फूर्जथुः (उत्थान) व्यज्यन्त (व्यक्त हुए) पातुं (पीने को) आवर्तः (भँवर) आभाति (दीखता है) भूयिष्ठं (बहुत) प्रमथ्यमानः (बहुत मथित होता) भूयः (पुनः) अयः (लोहा) निभः (सदृश) तन्वी (पतली) वनराजिः (वन-पंक्ति) निबद्धा (बंधी) कलंकरेखा (काली रेखा)।

कृदन्त (पुनः)—

१२. नहीं वैसेका वैसा होना (अभूततद्भाव)—

(४४) क्त्वा (=त्वा)—नानाकृत्वा, विनाकृत्वा ।
ल्यप् (=य)—नानाकृत्य, विनाकृत्य ।
(अव्ययसे भी)—उच्चैः कृत्वा, नीचैः कृत्वा, उच्चैः कृत्य ।

(४५) णमुल् (=अम्) (बार-बारके लिये)—स्मारं स्मारं, भोजं भोजं, श्रावं श्रावं, (बार-बार सुनते)।
,, (कर्मसे)—उदरपूरं भुंक्ते, यावज्जीवं अधीते ।
,, गोष्पदपूरं वृष्टो देवः (गायके पैर भर बरसा)
,, चूर्णपेषं पिनष्टि (चूर्ण जैसा पीस दिया)।
,, समूलघातं हन्ति (जड़सहित मारता है)।
,, (करणसे)—पादघातं हन्ति, असिघातं हन्ति (असिद्वारा)।
,, स्वपोषं पुष्णाति, गोपोषं पुष्णाति ।
,, (एक कर्तावालेसे)—दण्डघातं दारकान् प्रेषयति ।
,, (अव्यय युक्त कृ धातुसे)—उच्चैः कारं, नीचैः कारं ।
,, (अभूततद्भावमें)—नानाकारं, विनाकारं, एकधाभावं, तूष्णीभावम् ।

द्वाविंशः पाठः

(दसवीं सदी ईसवीका ताम्रलेख)—

श्रीसात्यकिः प्रणयिदैन्यनिराकरिष्णु-
र्विष्णुर्यथा पृथुगुणो विजितारिचक्रः ॥ ३ ॥
किष्किंधिकाधीशकुले प्रसूता सोमप्रभा नाम बभूव तस्याः।
देवी, जगद्भूषणभूतमूर्तिः त्रिलोचनस्येव गिरीशपुत्री ॥ ४ ॥
अपूर्वमिन्दुं प्रविधाय वेधा सदा स्फुरत्कान्तिकलंकमुक्तम्।
सम्पूर्णबिम्बं वदनं यदीयं अभूत्तरां कंटकितांगयष्टिः ॥ ५ ॥
नानाविधालंकृतिसन्निवेशविशेषरम्या गुणशालिनी या।
मनोहरत्वं सुतरामवाप सचेतसां सत्कविभारतीव ॥ ६ ॥
'शृङ्गारसिन्धोः किमियं नु वेला किं वा मनोभूतरुमञ्जरी स्यात्।
वसन्तराजस्य नु राज्यलक्ष्मीः त्रैलोक्यसौन्दर्यसमाहृतिर्नु ॥ ७ ॥
जगत्रयीवश्यविधानदक्षा विद्या मनोमोहनिकाभिधा नु'।
इत्थं जनो जातवितर्कराशिर्यस्या न निश्चेतुमभूत् समर्थः ॥ ८ ॥
या च द्विरेफद्युतिकेशपाशं बिभर्ति धात्रा कुसुमायुधाय।
जगत्रयीमानससंयमार्थं कृतं प्रियं कर्तुमभीप्सुनेव ॥ १० ॥
यस्याः कपोलौ परिपाण्डुरागौ सौन्दर्यकान्तिद्रवनिर्भरौ च।
नेत्रोत्पलानन्दविधानदक्षौ शशांकबुद्धिं कुरुतो जनस्य ॥ १२ ॥
रागान्वितेनाप्यधरस्य यस्याः काठिन्यभाजा सुकुमारमूर्तेः।
न पद्मरागेण रसोज्झितेन सुधारसस्यन्दिन आप साम्यम् ॥ १३ ॥
यस्याश्च वज्रोज्ज्वलदन्तराजेर्मृणालकोमल्यभुजालतायाः।
तुङ्गं सलावण्यजलं विभाति कुचद्वयं दुर्गमिवात्मजस्य ॥ १४ ॥
बालप्रवालारुणभावभाजी कराम्बुजे यद्वदनेन्दुभासा।
योगेपि यस्याः प्रविकस्वरत्वं धत्तो जनो विस्मयकार्यभूत् तत् ॥ १५ ॥
यस्याश्च मध्यं स्तनभारभृत्या मा भूत् विभंगः कृशताकुलस्य।
एतस्य शंकामिति बिभ्रतेव धात्रा वलीदामचयेन बद्धम् ॥ १७ ॥

पतेत् सुधासिक्तकरप्रतानो व्याकोशताशालिनि पङ्कजे चेत् ।
तस्याः सरागे चरणाब्जयुग्मे नखांशुजालस्य तदोपमा स्यात् ॥२०॥
अप्रच्यवं शैलजया सहास्याः स्यात् सख्यमित्येतदसौ नरेन्द्रः ।
अचीकरद् देवकुलं कलङ्कमुक्तेन्दुलेखाङ्कितशेखरस्य ॥२१॥

—सराहण (चंबा) शिलालेख ।

[प्रेमियोंकी दरिद्रताको निराकरण करनेवाले बड़े गुणी, शत्रुओंको जीते श्री सात्यकि (हैं) ॥ ३ ॥

उसकी देवी (रानी)—जगद्‌के भूषणभूत आकृतिवाली, शङ्करकी गिरिजा जैसी—क्किष्किन्धिकाके राजाके कुलमें उत्पन्न है ॥ ४ ॥

सदा चमकती कान्ति तथा कलङ्क-मुक्त अपूर्व चन्द्रमावाले जिसके सम्पूर्ण बिम्बयुक्त वदनको बना ब्रह्मा रोमाञ्चित शरीर हो गये ॥ ५ ॥

नाना प्रकारके अलंकारोंकी सज्जासे विशेष रमणीय (और) गुणशालिनी (हो) जो प्राणियोंको अच्छे कविकी भारती (कविता) की तरह अति मनोहर लगती थी ॥ ६ ॥

'यह श्रृंगार-सागरकी वेला (तट) है, या कामतरुकी मञ्जरी है । या वसंत-राजकी राज्यलक्ष्मी, अथवा तीनों लोकोंके सौन्दर्यकी राशि है ? ॥ ७ ॥

या तीनों लोकोंको वशीभूत करनेमें निपुण मनमोहनी नामक विद्या है', इस प्रकार बहुत तर्कोंमें पड़ा आदमी जिसके सम्बन्धमें निश्चय करनेमें समर्थ नहीं हुआ ॥८॥

कामदेवके लिये तीनों लोकोंके संयमित करनेको, प्रिय (काम) करनेके इच्छुक, विधाता द्वारा बनाये भ्रमरकी द्युतिवाले केशपाशको जो धारण करती है ॥१०॥

सौन्दर्य-कान्तिके रससे पूर्ण नेत्रकमलके आनन्दित करनेमें निपुण और, गुलाबी रंगवाले जिसके कपोल आदमीको चन्द्रमासे जान पड़ते हैं ॥ १२ ॥

जिस सुकुमारमूर्तिके अमृतरसस्रावी अधरकी समता रागयुक्त भी रसरहित कठोर पद्मराग (लाल) नहीं पा सका ॥ १३ ॥

हीरेसी उज्ज्वल दंत-पंक्तिवाली, मृणालकी कोमलता (युक्त) भुजा लता वाली, जिसके दोनों कुच कामदेवके लावण्यजलसहित तुंग दुर्ग जैसे दीखते हैं ॥ १४ ॥

जिसके मुखचंद्रकी प्रभाके योगमें भी नवीन मूंगेसे अरुणिमावाले दोनों करकमल जिस चमकीलेपनको धारण करते हैं, वह लोगोंके लिये विस्मयकारी हुआ ॥

स्तनके भारको ढोनेसे टूट न जाये, इस कृशताकी शंकाको (मनमें) धारण करते मानो विधाताने जिसके मध्य (कटि) को त्रिवली की रस्सी से बांधा ॥१७॥

यदि सुधासिक्त किरणजाल फूले कमलपर पड़े, तो उसके दोनों लाल चरण-कमलोंके नखकिरणजालकी उपमा हो सकता है ॥ २० ॥

गिरिजाके साथ इसकी न टूटनेवाली मित्रता हो, यह (सोच) उस राजा (सात्यकि) ने निष्कलंक चंद्रकी लेखासे अङ्कितललाटवाले (शिव) के देवालय को बनाया ॥ २१ ॥]

प्रणयी (प्रेमी) **दैन्यं** (दीनता, गरीबी) **निराकरिष्णुः** (हटानेवाला) **पृथुगुणः** (बड़े गुणवाला) **किष्किंधिका** (हिमालयका एक राज्य) **प्रसूता** (पैदा हुई) **देवी** (रानी) **त्रिलोचनः** (शंकर) **प्रविधाय** (बनाकर) **वेधा** (ब्रह्मा) **अंगयष्टिः** (शरीर) **अलंकृतिः** (आभूषण) **सन्निवेशः** (सजाना) **सुतरां** (अत्यधिक) **अवाप** (पाया, लिट्) **भारती** (सरस्वती, कविता) **वेला** (तटभाग) **मनोभूः** (कामदेव) **समाहृतिः** (संचय, राशि) **वश्यं** (वशयोग्य) **मनोमोहनिका** (मनमोहिनी) **अभिधा** (नामक) **द्विरेफः** (भ्रमर) **कुसुमायुधः** (कामदेव) **अभीप्सुः** (इच्छुक) **द्रवः** (रस) **निर्भरः** (मात्र) **शशांकः** (चन्द्र) **अधरं** (ओठ) **काठिन्यभागः** (कठोर) **पद्मरागः** (लाल) **आप** (पाया, लिट्) **वज्रं** (हीरा) **राजिः** (पांती) **कौमल्यं** (कोमलता) **दुर्गः** (किला) **प्रवालं** (मूंगा) **अरुणभावभाजी** (लालिमावाले दो) **प्रविकस्वरं** (प्रकाशमान) **भृतिः** (ढोना) **विभंगः** (टूटना) **कृशताकुलं** (क्षीण, पतला) **बिभ्रत** (धारता) **धाता** (ब्रह्मा) **वली** (उदररेखा) **दाम** (रस्सी) **करप्रतानः** (किरणजाल) **व्याकोशः** (उत्फुल्ल) **अप्रच्यवं** (न च्युत होनेकी) **शैलजा** (पार्वती) **अचीकरद्** (बनाया, किया) **इन्दुलेखा** (चंद्र-रेखा) **शेखरः** (ललाट) **इन्दुलेखांकितशेखरः** (शंकर)।

स्त्रीप्रत्यय—

१. **टाप्** (=आ)—**एडका** (भेड़), **चटका** (गौरइया), **बालाः**, **वत्सा**।

२. **टाप् और ख** (=इका)—**पाठिका**, **वाचिका**।

३. **ङीप्** (=ई)—**कर्त्री**, **भर्त्री**, **पचन्ती**, **पठन्ती**, **नदी**, **सौपर्णेयी**, **ऐन्द्री**, **औत्सी**, **पंचतयी**, **आक्षिकी**, **लावंगिकी**, **यादृशी**, **जित्वरी**।

(ऋकारान्त, उकारान्त और अण्, अञ्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठ, क, क्वरप् प्रत्ययवाले पुल्लिंगोंसे ङीप् आता है)।

ङीप्—गार्गी।

" (बुढ़ापा छोड़)—कुमारी, तरुणी।

" (अजन्त द्विगुसमाससे)—त्रिलोकी, त्रिपिटकी।

४. ङीप् (=ई)—नर्तकी, गौरी, अनडुही, शृङ्गी, पिंगली, गवयी (नीलगाय), मालती।

ङीप्—गोपी (नाममें)।

" (आक्के साथ)—इन्द्राणी, वरुणानी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, हिमानी, अरण्यानी, यवानी, यवनानी, आचार्याणी, (स्वयं में)—आचार्या, उपाध्याया।

ङीप्—शाककर्णी, शालपर्णी, शंखपुष्पी, ओदनपाकी, दर्भमूली।

५. ङीप् (=ई)—(दिशा पहिले होनेपर)—प्राङ्मुखी, उदङ्मुखी (उत्तरमुखी)।

६. ऊ (उकारान्त शब्दका दीर्घ होता है)—कुरूः, पंगूः (पंगु स्त्री), करभोरूः।

इति सांकृत्यायनीयायां संस्कृतपाठमालायां चतुर्थं पुस्तकं समाप्तम्।

—∞◇∞—

संस्कृत पाठमाला

(१–५ भाग)

लेखक—

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

स्वतन्त्र भारत के हरएक बालक और बालिका को संस्कृत का ज्ञान होना परमावश्यक है। बिना इसके राष्ट्रभाषा हिन्दी पर पूरा अधिकार हो ही नहीं सकता। इसी लिये संस्कृत को सुगमता से सीखने के लिये सांकृत्यायन जी ने इस पुस्तक को पाँच भागों में बाँट कर बहुत ही सरल ढंग से लिखा है। पाँचों भागों के पढ़ जाने से संस्कृत भाषा तथा छन्द और अलंकार का इतना ज्ञान हो जायगा कि आप रामायण, महाभारत ही नहीं कालिदास आदि महान् कवियों की कृतियों का रस भी मूल भाषा में ले सकते हैं।

प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा विद्याभवन

पो. बा. नं. ६९, चौक, वाराणसी–१